सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का प्रतिपादक मासिक

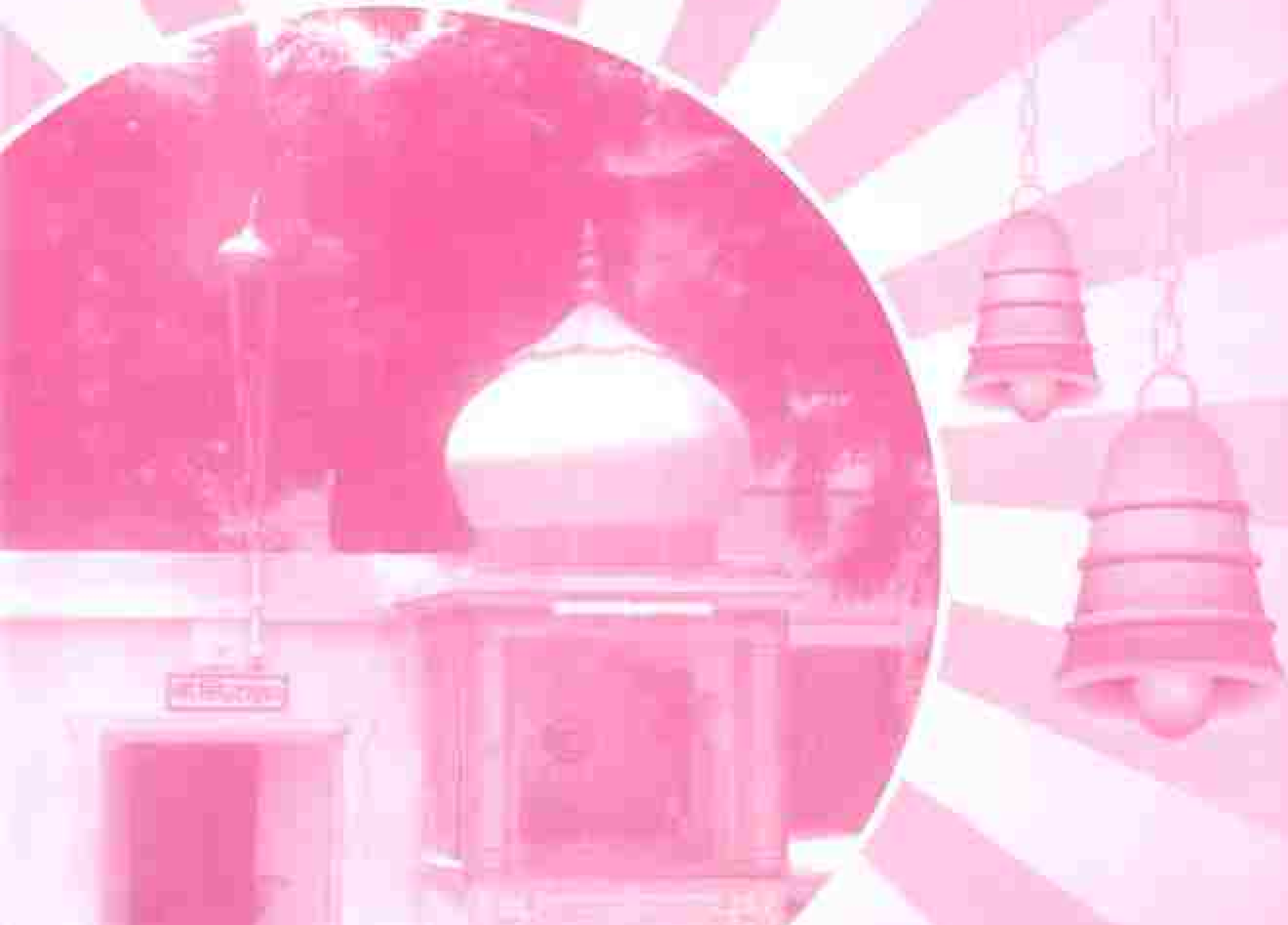

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 55 : अंक : 06
सितम्बर 2022

प्रकाशन तिथि : 01.09.2022

मूल्य - एक प्रति : 22/-, द्विवार्षिक : 400/-

अमृतकण

आददीत परां विद्यां प्रयत्नादवरादपि।
अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि।।

(महर्षि मनु)

अर्थात् स्त्री रत्न को भले ही वह कुलीन न हो, अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करो और नीच व्यक्ति की सेवा करके उससे भी श्रेष्ठ विद्या सीखने का प्रयत्न करो। चाण्डाल द्वारा भी श्रेष्ठ धर्म की शिक्षा ग्रहण करो।

◆ ◆ ◆

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
समं पश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति।।

(मनुस्मृति 12/91)

अर्थात् सम्पूर्ण चराचर जीवों में आत्मा को तथा आत्मा में सम्पूर्ण जीवों को देखता हुआ आत्मयाजी (ब्रह्मार्पण न्याय से ज्योतिष्टोमादि करने वाला) ब्रह्मत्व अर्थात् मुक्ति को पाता है।

◆ ◆ ◆

आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जीवितं।
व्यापारैर्बहु कार्यभार गुरुभिर्कालो न विज्ञायते।।
ज्ञात्वा जन्म-जरा-विपत्ति-मरणं त्रासश्च नोत्पद्यते।
पीत्वा मोहमयीं प्रमाद मदिरां उन्मत्तभूतं जगत्।।

(भर्तृहरि)

रोज-रोज सूर्य के निकलने और छिप जाने से आयु का एक-एक दिन क्षीण होता जा रहा है। व्यापार और कार्यभार की अधिकता से समय का ज्ञान नहीं हो पाता। रोज-रोज मनुष्य जरा जन्म-मरण की सूचनायें पाता रहता है किन्तु फिर भी मन में कुछ भय उत्पन्न नहीं होता, यह मोहमयी प्रमाद मदिरा को पी कर पागल सा हुआ घूम रहा है। यही कारण है कि अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य जन्म, मद्यान्धों की तरह बीतता चला जा रहा है; किन्तु इसकी दुर्लभता की चेतावनी का स्मरण किसी को नहीं हो पाता।

●●●

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरत्तो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :—शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 55 सितम्बर 2022 अंक : 06

यो देवो अग्नौ यो अप्सु
यो विश्वं भुवनमाविवेश।
य ओषधीषु यो वनस्पतिषु
तस्मै देवाय नमो नमः।।

जो सर्वशक्तिमान् पूर्ण ब्रह्म परमदेव अग्नि में हैं, जो जल में हैं, जो समस्त लोकों में अन्तर्यामी रूप से प्रविष्ट हो रहे हैं, जो औषधियों में हैं और जो वनस्पतियों में हैं– अर्थात् जो सर्वत्र परिपूर्ण हैं, जिनका अनेक प्रकार से पहले वर्णन कर आये हैं, उन परमदेव परमात्मा को नमस्कार है। नमस्कार है।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख- *योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज*	03
2.	सम्पादकीय	07
3.	परित्राणाय साधूनां- *जगदीश राए बंसल*	12
4.	नौलि- *श्री सूरज प्रकाश शर्मा*	18
5.	अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का 113वां प्राकट्य दिवस समारोह	24
6.	प्रश्नोपनिषद्-ऋषि भार्गव के प्रश्न- *कृष्ण कुमार पाण्डेय*	25
7.	कल्याण का आदि स्रोत- *अनु राम यादव*	28
8.	मोतियाबिन्द का प्राकृत उपचार- *श्री साधनानन्द*	35
9.	गृहस्थ के लिए आवश्यक पंच महायज्ञों का विधान- *श्री हरलाल शास्त्री*	38

एक प्रति	: रु. 22.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 400.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 1000.00

विशेष लेख–

प्राणायाम एवं क्लेश निवृत्ति

(योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज)

पिछले लेखों में हमने 'अविद्याऽस्मिता रागद्वेषाभिनिवेषाः क्लेशाः' विविध साधनों को समझाने का प्रयत्न किया है। वैसे तो महर्षि पतंजलिनदेव के बतलाये योगांगों में सभी पंच विधि क्लेशों की निवृत्ति के लिए ही हैं, क्योंकि उन्होंने योगांगों के अनुष्ठान करने का फल विवेक ख्याति बतलाया है। विवेक ज्ञान उसी दशा में प्राप्त हो सकता है जबकि रज और तम के नाश हो जाने के बाद स्वतः ही सत्व शुद्धि हो जाये और ज्ञान चमक उठे। यथा–

योगाङ्गानुष्ठानाद शुद्धिक्षये ज्ञान दीप्तिरा विवेक ख्यातेः।

अर्थात् योगांगों का अनुष्ठान करने से अशुद्धि का नाश होता ही रहता है, जब तक मनुष्य को पूर्ण रूप से ज्ञान प्राप्त न हो जाये। जैसा कि इस सूत्र पर व्यास भाष्य है :–

योगांगानिः अष्टावभिधामिष्य माणानि तेषामनुष्ठानात् पंच पर्वणोविपर्य्यस्या शुद्धिरूपस्य क्षयः नाशः, तत्क्षये सम्यग् ज्ञानस्याभिव्यक्तिः, यथा यथा च साधनान्यनुष्ठीयन्ते तथा तथा तनुत्वमशुद्धिरापद्यते, यथा यथा च क्षीयन्ते तथा तथा क्षयक्रमानुरीधिनी ज्ञानस्यापि दीप्तिर्विवधते, सा खल्वेषा विबृद्धिः प्रकर्षमनुभवति आ विवेक ख्यातेः आगुण पुरुषस्य रूप विज्ञानादित्यर्थः।

अर्थात् योग के आठ अंग हैं जो पहले लिखे जा चुके हैं। उनको अभ्यास में लाने से पंचपर्वा विद्या जनित अशुद्धि का नाश होता है और अविद्या के नाश हो जाने पर सम्यक् ज्ञान की अभिव्यक्ति होती है जैसे जैसे मनुष्य साधनों का अनुष्ठान करता है, वैसे ही वैसे अशुद्धि क्षीण होती चली जाती है और ज्यों–ज्यों अविद्या जनित अशुद्धि क्षीण होती है त्यों–त्यों क्षय कर्मानुरोधिनी ज्ञान दीप्ति बढ़ती चली जाती है। जितना जितना अशुद्धि का नाश होता है उतना ही उतना विवेक ज्ञान बढ़ता रहता है। इस विवेक ज्ञान की बुद्धि गुणों से लेकर जब तक आत्म दर्शन नहीं होता तब तक विवेक ख्याति बढ़ती ही चली जाती है। पुरुष, ज्ञान ही विवेक ज्ञान की सीमा है। हमने अपने पिछले लेखों में क्लेश–निवृत्यक यम–नियम आदिकों का वर्णन भली प्रकार कर दिया है। यम–नियमों का पालन करना विवेक ज्ञान का साधन है। यम–नियमों के बाद में क्रमानुसार भगवान पतंजलिदेव ने आसनों का संकेत किया है। आसनों के विषय में लोगों की धारणा है कि ये सब केवल शरीर शुद्धि के ही कारणभूत हैं।

किन्तु बात ऐसी नहीं है। शारीरिक अयोग्यता प्राप्त करना तो है ही, किन्तु शरीर के साथ–साथ साधक के मानस स्वास्थ्य को भी पूरा–पूरा लाभ पहुँचता है। आसन करने वाले साधक का शरीर स्वस्थ सुकोमल एवं लम्बे समय तक रहने वाला बन ही जाता है। किन्तु उसके साथ साथ ज्यों ज्यों मनुष्य आसन–बंध–मुद्राओं का अधिक अभ्यास करता है। त्यों–त्यों उसके शरीर मे वीर्य व्यापक होकर मानस शान्ति एवं आत्म तेज को बढ़ाने वाला होता है और आसनों में भी कुछ आसन तो इस प्रकार के हैं कि जिनका परिणाम शारीरिक स्वास्थ्य वृद्धि के साथ–साथ आत्मोत्कर्ष की ओर भी बहुति प्रगति के साथ बढ़ाना है। जैसे सिद्धासन पद्मासन पश्चिमोत्तान एवं शीर्षासन। जहाँ हमारे आचार्यों ने आसनों का वर्णन किया है वहाँ पर इनके फलादेश में पारमार्थिक लाभ का भी बहुत बड़ा परिचय दिया है। देखिये, सिद्धासन का फल, योगी आत्माराम ने हठयोग प्रदीपिका में इस प्रकार लिखा है–

चतुरशीति पीठेषु
सिद्धमेव सदाभ्यसेत्।
दा सप्तति सहस्त्राणां
नाडीनां मल शोधनम्।।
आत्मध्यायी मिताहारी
यावद् द्वादश शवत्सरम्।
सदा सिद्धासनाभ्यासात्
योगी निष्पत्ति माप्नुयात्।।

अर्थात् चौरासी आसनों में सिद्धासन के अभ्यास को ही प्रमुखत: करना चाहिए जो बहत्तर हजार नाड़ियों के मल का शोधन करता है। इस आसन का बराबर सेवन करते रहने से बारह वर्ष में मनुष्य सिद्धि को पा जाता है। इसी प्रकार से पद्मासन का फल देखिए–

पद्मासने स्थितो योगी
नाडी द्वारेण पूरितम।
मारुतं धारयेद्यस्तु स
मुक्तो नात्र संशय:।।

अर्थात् पद्मासन में बैठकर जो योगी मारुत धारण करता है उसकी मुक्ति में कोई शंका ही नहीं। इसी प्रकार से पश्चिमोत्तान का फल देखिये।

इति पश्चिमतान मासनाग्र्यं
पवनं पश्चिम वाहिनं करोति।

उदयं जठरानलस्य कुर्यादुदरे
कार्श्यम रोगतां च पुंसाम्।।

अर्थात् पश्चिमोत्तान आसन प्राण रूप को पश्चिम वाही करता है अर्थात् सुषुम्णा में पहुँचता है और जठराग्नि को बढ़ाता है। उदर के मध्य कृशता को करता है और बल देकर शरीर को आरोग्य करता है। इस प्रकार से शीर्षासन का फल देखिये।

मुद्रेय साधयेन्नित्यं
जरामृत्युं च नासयेत्।
स सिद्धः सर्व लोकेषु
प्रलयेपि न सीदति।।

शीर्षासन को विपरीतकरणी मुद्रा कहा गया है शीर्षासन के अभ्यास में मनुष्य को अधः शिरोर्धपाद होना पड़ता है। इसलिए इस आसन को विपरीतकरणी मुद्रा कहा गया है। जो मनुष्य विपरीत करणी मुद्रा का अभ्यास करता है, वह बुढ़ापे और मृत्यु पर विजय पा जाता है और पूर्ण रूपेण सिद्ध हो जाता है। आदि आदि। अतः हमारे योग आसन केवल शारीरिक स्वास्थ्य के लिए ही नहीं प्रत्युत आत्मोत्कर्ष के भी दाता हैं। और समस्त योगांगों में आसनों का स्थान उत्कृष्ट होने से ये भी अनुष्ठान किये हुए मनुष्य को विवेक ख्याति की ओर ले जाते हैं। जहाँ पर मनुष्य को योग के अन्यान्य अंगों का अभ्यास करने में अविद्या जनित अशुद्धि का नाश होता है, वहाँ पर प्राणायाम का विषय उत्तरोत्कृष्ट है। भगवान पतंजलिदेव योग दर्शन में तप के द्वारा अशुद्धि नाश होने पर कायिक और इन्द्रिय सिद्धि होने का उत्कृष्टता के साथ वर्णन करते हैं। तप की उनकी व्याख्या है–

द्वन्द सहन तपः

अर्थात् सर्दी–गर्मी–भूख–प्यास के जोड़े को सहन करना तप कहलाता है। द्वन्द सहन का अर्थ इतना ही नहीं कि मनुष्य समय समय पर भूख प्यास पर कन्ट्रोल करले प्रत्युत प्राण पर नियंत्रण करना भी इस परिभाषा में आती है। प्राण पर नियंत्रण करने को सबसे बड़ा तप कहा है। प्राण की महिमा का वर्णन करते हुए हमारे आचार्यों ने बहुत कुछ कहा है। वे लिखते हैं–

प्राणोपि भगवानीशः
प्राणी प्राणो विष्णु पितामहः।
प्राणेन धायते लोकः
सर्वं प्राण मयं जगत्।।

अर्थात् प्राण ही भगवान शिव है और प्राण ही स्वयं ब्रह्म है प्राण ही सारे संसार को धारण करता है सारा संसार प्राणमय है। इसलिए प्राण पर नियन्त्रण करना तपों से भी महान तप है और विवेक ख्याति का मूल कारण है। इसलिए अविद्या जनित क्लेशों की निवृत्ति के लिए प्राणायाम भी बहुत बड़ा अमूल्य साधन है। भगवान मनुदेव मनुस्मृति में लिखते हैं–

दह्यन्ते हि धमाय मानानां
धातूनां यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते
मला प्राणस्य निग्रहात्।।

अर्थात् जिस प्रकार सोना चांदी आदि धातुओं के तपाने से उनके मल जल जाया करते हैं, इसी प्रकार से प्राणों पर नियंत्रण करने से इन्द्रियों के मल जल जाते हैं। अतः प्राणायाम भी क्लेश, निवृत्ति का एक बहुत बड़ा साधन है, जिसका सांकेतिक परिचय देने का हमने प्रयत्न किया है। आगामी लेखों में हम इसका विशद वर्णन करेंगे।

ज्ञान की वृद्धि का उपाय

मनुष्य के अन्दर जो कुछ भी थोड़ा–बहुत आध्यात्मिक ज्ञान होता है, उसे आचरण में उतारना ही ज्ञान की वृद्धि का उपाय है। ज्ञानी महापुरुषों के द्वारा जो कुछ उपदेश मानव जाति को समय–समय पर होते रहे और साधक को जन्म से ही जो विवेक बुद्धि प्राप्त रहती है, उससे उसे इसके आगे क्या करना है, इस विषय में यथेष्ट प्रकाश मिलता है। जो कुछ उसे प्राप्त है, उसको अमल में लाना कठिन है।

— श्री प्रभु जी

सम्पादकीय—

गुरुदेव के कुरुक्षेत्र में योग-प्रचार का प्रवचन सार

—आचार्य डॉ. दासलाल जी महाराज

दिनांक 21 फरवरी से 2 मार्च 1982 तक श्री गुरुदेव जी का योग-प्रचार कार्यक्रम कुरुक्षेत्र कृष्ण-धाम पर चल रहा था। आदरणीय बहिन वेदवती जी ने सब आने वाले गुरुभाई-बहनों के आहार व आवास की बहुत ही सुन्दर व्यवस्था की थी। उन्होंने किसी को भी किसी प्रकार का अभाव महसूस न होने दिया। इस प्रकार उन्होंने इस महान कार्य को सम्पन्न कराकर विपुल पुण्यार्जन किया।

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत सायंकाल 5 बजे तक श्रद्धेया उमा बहिन जी का कथोपदेश होता रहा। इसमें उन्होंने आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र की योगमय लीलाओं का संगीतबद्ध वर्णन किया। उनकी यह लीला कथाऐं मनोहारी एवं मन्त्र-मुग्ध करने वाली थीं।

श्री सद्गुरु भगवान ने इस कार्यक्रम में जो योगोपदेश अमृत वर्षा की उसका सारभूत निम्न प्रकार से है—

योग साधक के लिए शास्त्रीय साधनाक्रम पर प्रकाश डालते हुये वे बोले—

इन्द्रियाणि पराणयाहु, रिन्द्रियेभ्यः परं मन।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो, बुद्धे परतस्तु सः।।

गी. 3/42

अर्थात् पहले योगी इन्द्रियों का साक्षात्कार करे तब मन का साक्षात्कार करे, तदनन्तर बुद्धि का साक्षात्कार करे और फिर आत्मा का साक्षात्कार करे। इस प्रकार इस साधनाक्रम से योगी उच्च-उच्च भूमिकाओं को प्राप्त करे। परन्तु इस प्रकार की साधना प्रायः दुष्कर पड़ जाती है हर व्यक्ति इसे नहीं कर सकता। योग-योगेश्वर आनन्दकन्द श्री प्रभुजी ने इस अवनि मण्डल पर अवतरित होकर अपने संस्कारी बालकों के लिए बहुत ही सरल पद्धति बताई वह पद्धति है मनोलय की। इस पद्धति का उपदेश अपने बालकों को उन्होंने दिया। योगदर्शन में सूत्र आता है—**'वीतराग विषयं वा चित्तम्'**। अर्थात् जो वीतरागी हैं, उनमें चित्त

लगाने से मन की एकाग्रता प्राप्त होती है। वीतराग पुरुष वह है जिन्होंने आत्म–साक्षात्कार कर लिया है। इसमें दो प्रकार के सिद्ध आते हैं एक अनादि सिद्ध हैं भगवान शंकर भगवान विष्णु आदि–आदि ये अनादि सिद्ध हैं दूसरे प्रकार के सिद्ध वह हैं जो अपने तीनों बन्धनों को काटकर कैवल्य–लाभ प्राप्त कर चुके हैं। इन सिद्धों के मन में मन, बुद्धि में बुद्धि, चित्त में चित्त एवं अहंकार में अहंकार मिला देने पर तद्रूपता आ जाती है। तब शिवोऽहम् वाली स्थिति प्राप्त हो जाती है। उसका अपना अस्तित्व समाप्त प्रायः हो जाता है।

'तदेवार्थमात्र निर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधि'

पा. सू 3/3

अर्थमात्र को निर्भासित करने वाला अपने रूप से भी रहित सा 'ध्यान' ही समाधि है।

अखिलात्मा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने अर्जुन से पूछा–हे अर्जुन! क्या तू मुझ में मिलना चाहता है ? संसार में ऐसा कौन व्यक्ति होगा जो श्रीकृष्णचन्द्र में न मिलना चाहता हो। भगवान् ने अर्जुन से कहा, यदि तू मिलना चाहता है तो–

मय्येव मन आधत्स्व, मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव, अत उर्ध्वं न संशयः।।

गी. 12 /8

अर्थात् हे अर्जुन! तू मुझमें ही मन को लगा तथा मुझमें ही बुद्धि को लगा। इस प्रकार करने से तू मुझमें ही निवास करेगा, इसमें कोई संशय नहीं है। हमारा मन ही मोक्ष व बन्धन का कारण है–

मन एव मनुष्याणाम् कारणम् बंध मोक्षयोः

इस मन को अपने इष्टदेव में लय करके ही हम शाश्वत शान्ति की ओर चल सकते हैं। इस प्रकार इष्टदेव में मन को लय करने पर हमें अनायास ही उनकी समस्त शक्तियाँ प्राप्त हो जाएंगी, करी–कराई कमाई हमें मिल जायेगी।

दूसरा प्रकरण जो सद्गुरुदेव जी ने बालकों को समझाया, वह था–

ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा, कूटस्थो विजितेन्द्रियः
युक्त इत्युच्ते योगी, समलोष्टाश्मकांचनः।।

गी. 6/8

दो प्रकार के योगी होते हैं–युञ्जन योगी तथा युक्त योगी। युञ्जन योगी वह होता है, जो यम, नियम, आसन, प्राणायामादि का क्रम से अभ्यास करता हुआ समाधि की ओर बढ़ रहा है। तथा दूसरा वह होता है युक्त योगी जिसने प्रकृति और पुरुष को जान लिया है तथा जो

अपने स्वरूप में अवस्थित है।

ज्ञान–विज्ञान तृप्तात्मा कौन होता है जो योगी प्रकृति के सारे विश्लेषणों को समझ कर उन पर अपना अधिकार कर लेता है। उस समय उसका इन पंच महाभूतों पर पूरा–पूरा अधिकार होता है। यह सृष्टि पंच भौतिक है। **'परमाणुपरममहत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः।'** –पा. सू. 1/40 अर्थात् योगी का वशीकार परमाणु से लेकर मूल प्रकृति पर्यन्त होता है। ज्ञान–विज्ञान तृप्तात्मा का उदाहरण देते हुए सद्गुरुदेव जी ने श्याम बिहारी शुक्ल का जिक्र किया। ये हमारे गुरु–भाई थे। श्री चरणों से योग–दीक्षा प्राप्त की थी। तदनन्तर जंगलों में जाकर साधना करते रहे। उनमें चित्त निर्माण व काय निर्माण की सामर्थ्य आ गई थी। योगी जब सम्प्रज्ञात समाधि की अन्तिम भूमिका में पहुँच जाता है तो उसमें चित्त–निर्माण की तदन्तर काय–निर्माण की शक्ति आ जाया करती है। एक बार श्यामबिहारी शुक्ल के इष्ट–मित्रों ने पूछा कि महाराज! क्या आप भी काय–निर्माण कर सकते हैं ? उन्होंने कहा हाँ, मैं कर सकता हूँ ? उन्होंने आठ व्यक्तियों को भिन्न–भिन्न स्थान पर पैन्सिल व कॉपी देकर भेज दिया और कहा, मैं ठीक पाँच बजे सबके कागज पर हस्ताक्षर करूँगा। उन्होंने काय–निर्माण से आठों स्थानों में जाकर एक ही समय पर सबके कागजों पर हस्ताक्षर किये। जब वे सब एकत्रित हुए तो वह अपने स्थान पर ही मौजूद थे। यह था उनका काय–निर्माण।

पंच महाभूतों पर अलग–अलग अधिकार प्राप्त करने पर योगी में अलौकिक शक्तियाँ आ जाती हैं तथा उन महाभूतों पर उनका अधिकार होता है। पृथ्वी तत्त्व पर अधिकार प्राप्त कर लेने पर योगी पृथ्वी में अनायास ही प्रवेश पा सकता है तथा निकल सकता है। वह अपने शरीर को बहुत भारी बना सकता है। इसी प्रकार जल पर अधिकार प्राप्त होने पर संसार में समस्त रसों का उसे ज्ञान हो जाता है। अग्नि पर अधिकार होने पर आग्नेय लोक (सूर्यादि) में प्रवेश कर आग्नेय शरीर से वहीं रह सकता है। वायु तत्त्व पर अधिकार कर लेने पर वायु में स्वच्छन्द विचरण कर सकता है। आकाश–गमन आदि सिद्धियाँ आ जाया करती हैं। आकाश तत्त्व पर अधिकार होने पर संसार में जहाँ–जहाँ तक आकाश है सब प्रकार के शब्दों को योगी सुन सकता है।

'देशबन्ध चित्तस्य धारणा' किसी एक स्थान विशेष पर अपने चित्त को एकाग्र करना धारणा कहलाता है। धारणा दो प्रकार की होती है–एक बाह्य, किसी वस्तु विशेष पर दृष्टि दूसरी आभ्यान्तर जिसे वृत्ति बन्ध भी कहते हैं। धारणा में कल्पना करनी पड़ती है, इस प्रकार धारणा करते–करते कालान्तर में वही ध्यान रूप में बदल जाती है। ध्यान में प्रत्यक्ष

अनुभव होता है जबकि धारणा कल्पना का विषय है। ध्यान करते–करते उसी स्वरूप में साधक की तदाकारिता वृत्ति हो जाती है। धारणा, ध्यान व समाधि का संयम करने का यह फल होता है कि जिस भी वस्तु के बारे में हम जानना चाहें उसी का यथार्थ ज्ञान हो जाया करता है। **'सूर्ये संयमात् भुवन ज्ञानं।'** सूर्य में संयम करने पर समस्त भुवनों का ज्ञान हो जाता है। योगी अपने मन को सूर्य–किरणों में संयमित कर लेता है वह किरण ब्रह्माण्ड में जहाँ तक है वहाँ तक के ब्रह्मांड का ज्ञान हो जाता है। शरीर में मणिपूरक चक्र अग्नि का केन्द्र है, वहाँ पर संयम करने से योगी को भुवन ज्ञान होता है। बाहरी जो दृश्यमान सूर्य है, उसमें संयम करने से नहीं। इसमें यदि हम संयम करना चाहेंगे तो हमारी आँखें अन्धी हो जाएंगी, क्योंकि आँखों में अग्नि तत्त्व है और सूर्य भी अग्नि का केन्द्र है। सिद्धान्त यह है कि बड़ी शक्ति छोटी शक्ति को अपने में विलीन कर लेती है।

अस्मितानुगत समाधि तक योगी जब पहुँच जाता है तो उसमें दो विशेष ताकतें आ जाती हैं। एक यह कि उसमें चित्त–निर्माण एवं काय निर्माण की योग्यता आ जाया करती है। योगी कई चित्तों का निर्माण कर अनेक शरीर धारण कर सकता है। दूसरी शक्ति योगी को प्राप्त होती है वह है ऋतम्भरा प्रज्ञा। इस प्रज्ञा के प्राप्त होने पर योगी सिद्धान्तों का निर्णायक बन जाया करता है। इस प्रज्ञा के उत्पन्न होने पर नये संस्कार नहीं बनते।

तज्ज संस्कारोऽन्यसंस्कार प्रतिबन्धी

–पा. सू. 1/50

ऋतम्भरा प्रज्ञा से उत्पन्न संस्कार अन्य संस्कारों का बाधक होता है।

समाधिकाल में चित्त की वृत्तियाँ विलीन हो जाती है, परन्तु व्युत्थान काल में (साधारण दशा में) साधक के जैसे गुण होते हैं, उसी प्रकार का व्यवहार पाया जाता है। अतः जिस साधक ने समर्थ गुरुदेव के नियन्त्रण में रहकर यम–नियम आदि साधनों का ठीक से पालन न किया हो तो व्युत्थान काल में वैसा ही आचरण करता है जैसा उसका स्वभाव है। इसलिए यम–नियमों का पालन अत्यावश्यक है। योगी सम्प्रज्ञात समाधि के अन्तर्गत जब कई चित्त–निर्माण की योग्यता रखता है, तब वह कई चित्त बनाकर अपने संस्कारों का क्षण भर में भुगतान कर सकता है।

इसलिये जब तक साधक कम से कम आनन्दानुगत समाधि तक न पहुँचे–उसके बार–बार बुलाये जाने पर भी परमात्मा उसके पास नहीं आते। द्रौपदी की भगवान ने हर समय सहायता की। इसका कारण यही था कि वह योग–ध्यान वाली थीं, उसका मन एकाग्र था। कई योगी आनन्दानुगत या अस्मितानुगत समाधि को ही आत्म–साक्षात्कार समझ लेते

हैं, ऐसे योगी देह नाश के पश्चात् प्रकृतिलीन रहा करते हैं। पश्चात् जन्म ग्रहण करते हैं, उन्हें जन्म से ही योग की प्रतीति होती है।

भव प्रत्ययो विदेह प्रकृतिलयानाम्

–पा. सू. 1/19

इस प्रकार अन्य भी विभूतिपाद में वर्णित सिद्धियाँ संयम से प्राप्त की जाती है।

यह सबका सब ज्ञान तृप्तात्मा योगी की उपलब्धियाँ है। विज्ञान तृप्तात्मा वह होता है, जिसने पूर्णरूपेण आत्म–साक्षात्कार कर लिया हो।

इस प्रकार जीवन धन सद्गुरुदेव जी ने दस दिन पर्यन्त योग–सिद्धान्तों को अपने बालकों के मन में भरने का प्रयत्न किया। ऐसे सद्गुरुदेव को लाख–लाख प्रणाम है।

संसार

अधिकांश व्यक्ति संसार को दुःख और अशांति का घर समझते हैं। बहुत थोड़े व्यक्ति संसार को सुख और सौन्दर्य का धाम मानते हैं वस्तुतः संसार में सुख और दुःख दोनों होते हैं परन्तु दुःख की अपेक्षा सुख अधिक होता है। संसार का सुख या दुःख पूर्ण होना मनुष्य की अपनी मनःअवस्था पर निर्भर होता है, अतः संसार के वास्तविक स्वरूप को भली–भांति जान और समझकर अपने को संसार के योग्य और संसार को अपने योग्य बनाना कल्याणप्रद होता है।

लोग संसार की निन्दा करते हैं। संसार की निन्दा करने की अपेक्षा उसका रहस्य जानना उत्तम है। लोग संसार की उपेक्षा करते हैं। उपेक्षा करने से उसका अध्ययन करना श्रेयस्कर है। लोग संसार का दुरुपयोग करते हैं। दुरुपयोग करने की अपेक्षा उसका सदुपयोग करना कल्याणकारी है।

–श्री रघुनाथ प्रसाद पाठक

।। श्री रामलाल प्रभवे नमः।।

परित्राणाय साधूनां...

जगदीश राए बंसल ''अधम'' 9212434003

हमारे महान देश विश्व योगगुरु भारत वर्ष का इतिहास त्यौहारों से ओतप्रोत है। इन विख्यात त्यौहारों में जन्म अष्टमी–श्रीकृष्ण जन्म का त्यौहार भाद्रकृष्ण पक्ष की अष्टमी को बड़े हर्ष–उल्लास से मनाया जाता है। लल्ला के जन्म पर नन्द बाबा और यशोदा माता के आंगन में गुंजते ग्वाल बालों के ये स्वर आज भी ज्यों के त्यों मन मोहक बने हुए है–

(i) नन्द घर आनन्द भयो, जय कन्हैया लाल की ....

(ii) हाथी घोड़ा पालकी, जय कन्हैया लाल की ....

(iii) गली–गली में मचा है शोर, पकड़ो–पकड़ो नन्द किशोर ....

इत्यादि।

कान्हा ने अपनी शैशवावस्था से ही अपनी लड़खड़ाती तोतली मखमली बोली से सबका मन मोह लिया। माखन चोरी, हॉडी–मटकी चटक, बांसुरी वादन, वस्त्रहरण, गौचरायन, निधिवन की रास एवं विभिन्न विलक्षण लीलाओं से गोप गोपीयों एवं नगर निवासियों को भक्ति रस बड़े पावन प्रेम से छकाया है। जब गोपियाँ माखन चोरी, हांडी फोड़ी की शिकायत को ढाल बनाकर कान्हा के दर्शन करने आती, तब मैय्या कान्हा से नाराज होकर दण्ड देने दौड़ती तो कान्हा कहते कि–

ब्रज मोरी, गयन मोरी–माखन मटकी मोर।
ये अधिकार जन्म को मेरो, कौन कहे चोर।।

महा आत्म ज्ञानी, जितेन्द्रिय, परम भक्त श्री सूरदास जी महाराज ने भगवान श्रीकृष्ण के बालकाल को अपनी भक्ति शृंगार के प्रेम बल द्वारा उपासना के धागे में पिरोकर भारत भूमि को कृष्णमय बना डाला है–

(i) **मैय्या मैं नहीं माखन खायो.......**

(ii) **मैय्या कबहूँ बढ़ेगी चोटि......**

(iii) **मैय्या मोहे दाऊ बहुत खिजायो.......**

(iv) **हरि अज देखे नंग्म नंग्मा** .... इत्यादि।

महासिद्धयोग शिरोमणी हमारे गुरुदेव भगवान श्रीचन्द्रमोहन जी महाराज जन्म अष्टमी के त्यौहार को अत्यन्त आनन्द और उत्साह के साथ मनाते थे। गुरुदेव स्वयं विधि विधानुसार उपवास रखते थे और आश्रम में उपस्थित श्रद्धालुओं के लिए सभी सुविधाऐं सुलभ होती थीं। निकट–दूर में कहीं कृष्णलीला का आयोजन हो रहा होता तो गुरुदेव सुन कर प्रसन्न हो जाते थे और किसी को भी वह लीला देखने जाने के लिए तुरन्त आज्ञा प्रदान कर देते थे। एक बार स्वयं हमारी सरकार ने भी श्रीकृष्ण लीला का विशाल आयोजन कराया था मगर वह अन्य लेख का विषय है।

कृष्ण जन्म अष्टमी के एक पावन पर्व पर गुरुदेव भगवान योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने अपने मुखार विन्द से अमृत वर्षा करते हुए बतलाया कि हमारे वेद शास्त्रों में चौबीस अवतारों का वर्णन आता है। इन 24 अवतारों में मात्र श्रीकृष्ण अवतार ही ऐसा अवतसार है जो सम्पूर्ण कलाओं से युक्त है। भगवान श्रीकृष्ण ने वासुदेव और देवकी को माता–पिता निमित बनाकर, स्वयं पुत्र रूप में अवतार लिया। देखो–भगवान इस धराधाम पर यूं ही पग नहीं रखते अपितु उनके अवतार लेने का कोई लक्ष्य होता है और जब निर्धारित लक्ष्य पूर्ण हो जाता है, तब वे अपने परम धाम को लौट जाते हैं। अखिलात्मा भगवान श्रीकृष्ण भी द्वापर युग में एक लक्ष्य ले कर अवतरित हुए और उनका लक्ष्य था–

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।

अर्थात् साधु पुरुषों का उद्धार, पापीयों का विनाश और धर्म की स्थापना करने के लिए मैं युग–युग में प्रकट होता हूँ। भगवान श्रीकृष्ण स्वयं नारायण हैं, आनन्द स्वरूप हैं, परिपूर्ण ज्ञानवान हैं तथा सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और संहार को अपनी लीला मानते हैं। भगवान

का दर्शन, कीर्तन और भजन करने को ही मनुष्य जन्म मिला है। भगवान का दर्शन तीन प्रकार का होता है। पहला–स्वप्न में किया गया दर्शन ''साधारण दर्शन'' कहा गया है। दूसरा–मन्दिर की मूर्ति में भगवान का दर्शन ''मध्यम दर्शन'' कहा गया है। तीसरा–भगवान का अपरोक्ष दर्शन ''उत्तम दर्शन'' का गया है। जीव जब भगवान के अपरोक्ष दर्शन करता है, तभी कृतार्थ हो जाता है। भगवान का दर्शन और भगवान की प्यारी–प्यारी मनमोहक लीलाऐं, इसीलिए हैं कि इन लीलाओं का चिन्तन करती हुई बृज गोपियाँ निज स्वरूप में भी परमात्मा का अनुभव करती थी कि ''अहम् ब्रह्मास्मि''। गोपियाँ सब में भगवान श्रीकृष्ण से ही निहारती थीं। वे कहती थीं कि इस वृक्ष में, लता में, फूल में, फल में सब में मेरा और केवल मेरा प्यारा प्रभु है। गोपियों ने श्रीकृष्ण के मन में मन, बुद्धि में बुद्धि मिलाई तो उन पर भगवान का शक्तिपात हो गया और वे ''ब्रह्मास्मि'' हो गई।

भक्ति के लिए कोई विशेष स्थान, विशेष समय नहीं होता। भक्ति द्वारा चौबीसों घंटे अपना सम्बन्ध टिकाए रखना चाहिए। कन्हैया के साथ अनुसंधान बनाए रखने से आनन्द मिलता है। दैहिक, दैविक और भौतिक त्रय पापों विनाश 'तापत्रय विनाशाय' कहा गया है। भगवान प्रेम सागर हैं, आनन्द सरोवर हैं। आनन्द स्वरूप भगवान सोलह हजार एक सौ आठ रानियों–महारानियों से मनो विनोद करते समय जिस प्रकार से आनन्दित थे उसी प्रकार द्वारिका का नाश होते हुए भी आनन्दित थे। भगवान के आनन्द में कहीं कोई परिवर्तन नहीं होता। हृदय से वन्दना करने पर भगवान से सम्बन्ध बनता है। पाप कम हो जाते हैं, मनुष्य निर्भय हो जाता है, उसकी मृत्यु सुधर जाती है। हृदय से पुकारने पर प्रभु जी प्रकट होकर कष्टों का निवारण करते हैं। द्रोपदी ने भगवान श्री कृष्ण को पुकारा कि–

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् कृष्ण गोपीजन प्रियः।
कौरवार्णव निमग्नां मां किं न पश्यसि केशव।।

योगेश्वर कृष्ण ने प्रकट होकर द्रोपदी के महान कष्ट का निवारण लिया। गीता में भगवान को योगेश्वर, योग योगेश्वर, योगाधीश, महायोगी आदि नामों से सम्बोधित किया गया है। भगवान के चरित्र में सर्वत्र योग ही टपकता है। महाभारत के नायक कृष्ण ने अर्जुन को बतलाया कि योगी तपस्वियों से, कर्मकाण्डियों से तथा ज्ञान योगियों से भी श्रेष्ठ हैं।

इसलिए हे अर्जुन तू योगी बन (**त्वं योगी भतार्जुन**) वेद में, यज्ञ में, तप में एवं दान में जो पुण्य फल कहा गया है, योगी उन सब को लाँघकर परमपद को प्राप्त हो जाता है।

भगवान श्रीकृष्ण ने अपने योग संकल्प से ही ग्वालों, गाय और बछड़ों का निर्माण किया था। यूं हुआ कि एक दिन भोजन के समय कृष्ण अपने सखा मधु मंगल का मुँह चाटते देख

कर ब्रह्मा जी पेशोपेश में डूब गए कि ये छोकरा भगवान नहीं हो सकता। नहीं, नहीं, कभी नहीं। इसकी परीक्षा लेनी चाहिए। अतः ब्रह्मा जी गाय–बछड़ों और ग्वालों को उठाकर ले गए। भगवान श्रीकृष्ण सर्व समर्थ है, सब समझ गए। उन्होंने अपनी लीला से गोय–गाय–बछड़ों आदि के अनेक रूप धारण कर लिए। किसी को भान नहीं हुआ। फिर ब्रह्मा जी दूसरी बार पृथ्वी पर देखने आए तो यथावत स्थिति को देखकर आश्चर्य में पड़ गए। सोचने लगे ये गाय–ग्वाल सच्चे हैं या जो मैं चुरा कर ले गया ? भगवान श्रीकृष्ण ने उनका भ्रम जाल तोड़ा। ब्रह्मा जी को भान होने पर, कृष्ण से प्रार्थना एवं क्षमा याचना की।

इसी प्रकार जब नन्द बाबा जी इन्द्र यज्ञ–पूजा की तैयारी करने लगे तो लाला के समझावे पर सब गोकुल वासियों सहिज श्री गोवर्धन की पूजा की गई। देवराज इन्द्र को देव ऋषि नारदजी ने अवगत कराया कि नन्दबाबा के छोहरे कृष्ण के बहकाने में आकर आपका अपमान किया है कि गोवर्धन की पूजा की है। इन्द्र महाराज ने कोपायमान होकर बारहों मेघों को आज्ञा दी कि जाओ, बृज पर टूट पड़ो, डुबो दो उस ....। श्रीकृष्ण भगवान ने बृज–वासियों की रक्षा के लिए अपनी अंगुली पर गोवर्धन पर्वत को सात दिन और सात रात उठाए रखा। इस लीला में भक्त और भगवान की तद्रुपता बताई गई है कि जीव और ईश्वर एक स्थान पर एक हुए हैं। यह ही **'सः अहमं सोऽहम्'** भाव है। भगवान ने इन्द्र का स्वर्ग का राजा होने का अभिमान गोर्वधन लीला से क्षय किया। इन्द्र ने कृष्ण को पूर्ण पुरुषोत्तम स्वीकार कर, कामधेनु को ढाल बना कर घुटने टेक क्षमा याचना की।

इसी प्रकार से एक बार भगवान श्रीकृष्ण के मन में कालिया नाग के उद्धार करने का विचार आया। वे सभी सखाओं के साथ उस जलाशय के किनारे गेंद खेलने लगे। यकायक गेंद उस जलाशय में जा गिरी। मित्रों ने कहा लाला इसमें नाग रहता है, जो जीव इस जल को ग्रहण करता है, वह मर जाता है। मगर लाला ने एक न सुनी और शीघ्रता से जल में कूद पड़े। ग्वाले घबरा गए। किसी अनहोनी की आशंका से बृजवासी रोने लगे। माता यशोदा मूर्छित हो गई। राधा माता सुधबुध खो बैठी। उधर कलिया नाग कृष्ण को डसने लगा। भगवान उसके फन पर आरूढ़ हो गए और अपना वजन बढ़ाने लगे। कालिया व्याकुल होता चला गया। अन्ततः कालिया ने अपना समर्पण कर दिया। नाग पत्नीयों की प्रार्थना के कारण उसे मृत्यु दण्ड न देकर गरूड़ जी के पास भेज दिया। कहा कि अब गरूड़ से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं, तेरे फन पर मेरे पैर पड़ गए हैं, गरूड़ तुझे शरण में रख लेगा।

अब आदि योगेश्वर श्रीकृष्ण भगवान ने मथुरा के निर्दयी राजा एवं अपने पापी मामा कंस का उद्धार करने का विचार किया। भगवान की लीला के अन्तर्गत देव ऋषि नारद जी

ने कंस के पास जाकर मार्ग प्रशस्त किया कि तू बड़ा भोला है। वासुदेव ने तुझे उल्लु बनाया है। वह अपने आठवें पुत्र को नन्द के पास गोकुल में छोड़ कर, नन्द की नवजात पुत्री को यहाँ ले आया है। कृष्ण देवकी की आठवीं सन्तान है और बलराम रोहणी का पुत्र है। न दोनों ने मिल कर तेरे सेवादारों (राक्षसों) पूतना, तृणावर्त, धनेकासुर, पलम्बासुर इत्यादि अनेकों को मार डाला है.......। यह सुन कर अत्याचारी कंस आग बबूला हो गया। देव ऋषि नारद आग लगाना नहीं जानते हैं और अपनी नारद लीला से आग बुझाना भी जानते हैं। कंस को चिन्ता डायन खाने लगी कि कृष्ण को मौत के घाट कैसे उतारा जाये ? राज ब्राह्मणों ने कंस को सुझाया कि राजन, तुम धनुष यज्ञ करो। इस यज्ञ से यजमान की आयु बढ़ती है और शत्रु का विनाश हो जाता है। योजनानुसार कंस ने अपनी दूर दर्शिता से अक्रूर जी को नन्द बाबा एवं कृष्ण बलराम सहित धनुष यज्ञ में पधारने का शुभ निमंत्रण देकर येन केन प्रकारेण अपने साथ मथुरा लाने को बाध्य कर, गोकुल भेज दिया। श्री अक्रूरजी महाराज कंस के सुवर्ण रथ में सवार होकर गोकुल की दिशा में चल चले। रास्ते में सोचते रहे–

मुझे लागी रे लगन तेरे दर्शन की।
जैसे पपीहा आश करे बरसन की।।

यात्रा भर अक्रूर जी भगवान का स्मरण करते रहे कि प्रभु मैं अधम, पापी, अपात्र, अल्पज्ञ, आप पतितपावन की शरण में आ रहा हूँ। आहा, मैं दर्शन करूँगा, वन्दना करूँगा, ...। अगले क्षण यह भी मन में आया कि वैसे तो मैं वयोवृद्ध हूँ, अगर कृष्ण मुझे 'काका' कहकर पुकारेंगे तो मेरा जन्म सफल हो जाएगा ..... इत्यादि।

अक्रूर जी को गोकुल पहुँचते–पहुँचते शाम हो गई। निमंत्रण पत्र पाकर भोले भाले नन्द बाबा तो खुश हुए, मगर यशोदा माता शोकमग्न रोती रहीं, रात भर करवटें बदलती रही। श्री राधिका जी बेहोश हो गईं। गोपियाँ विलाप करने लगीं। बृजधाम में अन्तरंग का संयोग, बहिरंग का वियोग हो गया।

श्याम बिनु बृज सूंनो लागे रे ....

अन्ततः दोनों भाई कृष्ण–बलराम की जोड़ी, नन्द बाबा और ग्वालों संग, अक्रूर जी के साथ मथुरा जा पहुँचे। मथुरा के सैर सपाटे करते कृष्ण ने धनुष यज्ञ का धनुष टुकड़े–टुकड़े कर दिया। अगले दिन रंग भूमि में कृष्ण बलराम की जोड़ी ने प्रवेश किया। श्रीकृष्ण दर्शन कर सभी ने अपने–अपने भावानुसार अनुभव किया–

जाकी रही भावना जैसी।
प्रभु मूरति देखी तिन्ह तैसी।।

भगवान श्रीकृष्ण और कर्कश मामा कंस के रस्सा कसी के दरम्यान, भगवान श्रीकृष्ण ने कंस के बालों को पकड़ कर, ये कहते हुए कि तूने मेरी माँ के यों ही बाल नौचे थे ना ......? भूमि पर पछाड़ दिया जिससे कंस दुष्ट के प्राण पखेरू हो गए।

कंस वध के पश्चात् भगवान श्रीकृष्ण ने मथुरा का राज्य अपने नाना जी श्री उग्रसेन को सौंप दिया और स्वयं अपने जेष्ट भ्राता दाऊ जी के संग क्षिप्रा नदी के किनारे उज्जैन क्षेत्र में स्थित श्री सांदिपनि ऋषिजी के उत्तम आश्रम मे विद्या अध्ययन हेतु प्रस्थान कर गए। देखिए–जिसके स्वासों में ही चारों वेद समाए हों उसको कौन क्या पढ़ाएगा ? ऋषि आश्रम पहुँचने पर वहाँ पढ़ने आए सौराष्ट्र स्थित पोरबन्दर वासी एक गरीब ब्रह्माण्ड पुत्र –महाज्ञानी, जितेन्द्रय, निष्कंचन सुदामा और कृष्ण में प्रागाढ़ मैत्री हो गई। अल्पकाल में ही, दोनों भाई, समस्त विद्या ग्रहण कर, गुरु आज्ञा से मथुरा लौट आए।

भगवान श्रीकृष्ण की गोकुल लीला ग्यारह वर्ष रही, मथुरा लीला चौदह वर्ष रही और श्री द्वारिका में यह कृष्ण लीला पूरे सौ वर्ष रही। देखो–यदि मनुष्य आरम्भ काल से ही स्वयं को श्री प्रभु जी के श्री चरणों का दास मान कर–''दासोऽहम्'' की भावना रखे तो उसका देहाभिमान क्षय हो जाता है और दासोऽहम् से 'सोऽहम्' की ओर प्रगतिशील हो जाता है। यह सोऽहम मन्त्र ही स्थूल 'प्रणव तत्त्व' रूप है, जो बिना पैर के चल लेता है, बिना आँख के देख लेता है .... इत्यादि। इस प्रणव तत्त्व को न सूर्य प्रकाशित कर सकता है, न अग्नि प्रकाशित कर सकता है। वही प्रभु जी का 'परम धाम' है। इस परम धाम को पा कर मनुष्य लौट कर पुनः संसार में नहीं आता। कबीर जी कहते हैं कि–

स्वास–स्वास में नाम जप, स्वास न खाली जाय।
न जानि इस स्वास को, आवन कब रुक जाय।।

इसलिए भगवान श्रीकृष्ण जन्म अष्टमी के इस परम पावन पर्व का महत्त्व जान कर स्वयं को स्वयं के उद्धार में लग जाओ। यह भगवान कृष्णावतार के लक्ष्य का अंश है। अस्तु।

सब को बार–बार आशीर्वाद।

नौलि

उदर की आभ्यान्तरिक शुद्धि एवं स्वच्छता के लिये संसार में अद्वितीय क्रिया

श्री सूरजप्रकाश शर्मा

नित्यानन्दं निराधारं
निखिलाधारमव्ययम्।
निगमद्वयगतं नित्यं
सद्गुरुं तं नमाम्यहम्।।

हमारे प्राचीन ऋषि–महर्षियों सिद्ध–योगियों के श्रम और मनन–चिन्तन व अभ्यास के फलस्वरूप जिस तरह हमें अन्य लाभप्रद विद्यायें मिली हैं, उसी तरह यह यौगिक शोधन षट्कर्म भी उनके वैज्ञानिक अनुभव से ही हमें प्राप्त है। ये षट्कर्म पूर्णतः शास्त्रीय हैं। इनका पालन दुःसाध्य नहीं, बल्कि सुसाध्य है। उपयोग की दृष्टि से यह सर्वोपयोगी हैं और अद्भुत लाभ प्रदान करने वाले हैं।

मन, बुद्धि, आत्मा तथा शरीर को सदैव स्वस्थ रखने के लिये ये साधन अचूक सिद्ध हुए हैं। इन साधनों से शुद्ध हुए शरीर में हल्कापन, शारीरिक सुन्दरता, अध्यात्मिक प्रसन्नता, आरोग्य, सन्तोष, धैर्य, स्वर की मधुरता, शरीर में सुगन्ध आदि दिव्य गुण उत्पन्न होते हैं।

इन साधनों से शुद्ध हुआ शरीर ही योगमार्ग का अधिकारी है।

ईश्वरीय आनन्दामृत का पान करना ही मानव–जीवन की सफलता है। कहा है–

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।

अर्थात् मानवता के स्वरूप स्थिति रूप वास्तविक उद्देश्य की प्राप्ति धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन्हीं से है। इन चारों पदार्थों का आधारभूत मौलिक साधन है स्वस्थ शरीर। शरीर के मल, चित्त के विक्षेप, अज्ञान के पर्दे को दूर कर स्थूल और सूक्ष्म शक्तियों को प्राप्त कर आत्मसाक्षात्कार के उपयुक्त होना उन्नति के प्रथम दो सोपानों (आधि भौतिक और आधि दैविक सोपानों) का अतिक्रमण करना है। इसके निमित्त हमारे प्राचीन तत्त्वदर्शी सिद्धयोगियों ने सर्वोपयोगी तथा वैज्ञानिक साधनों का निर्देश किया है।

शरीर शुद्धि के लिये यौगिक शोधन षट्कर्म हैं। शरीर को शक्तिशाली व स्वस्थ रखने

के लिए अथवा प्राप्त शक्ति की रक्षा के लिये तथा अधिक समय तक शरीर को एक सी उत्तम स्थिति में रखने के लिये विविध मुद्रायें यौगिक आसन, कायाकल्प, जीवन तत्त्व साधन अमरत्तत्व साधन, प्राणत्तत्व साधन और सर्व सुख प्राप्त होते हुए भी प्रभु दर्शन प्राप्त करने के लिए उपर्युक्त सभी साधनों के साथ–साथ प्राणायाम, प्रत्याहार धारणा, ध्यान, और समाधि रूप सूक्ष्म यौगिक साधनायें निर्दिष्ट की गयी हैं।

यहाँ सर्वप्रथम उस साधन पर प्रकाश डालूँगा, जो योगियों के योग का मूल आधार है। वह है शरीर शुद्धि–जिसके लिए यौगिक शोधन षट्कर्म है।

षट्कर्म में मुख्य कर्म 'नौलिकर्म' है। इस क्रिया की सिद्धि के बिना कोई भी योगी श्रेष्ठ हठयोग को अन्य क्रिया सिद्ध कभी नहीं कर सकता।

नौलि कर्म के अभ्यास से पूर्व जिस महत्त्वपूर्ण सोपान का वर्णन करना है, वह है 'उड्डीयानबन्ध। संस्कृत में इसका सीधा अर्थ है, उड्डीयान–उड़ती हुई कोई वस्तु, बन्ध = बांधना। किसी उड़ती हुई वस्तु को (श्रेष्ठ वस्तु) अपने नियन्त्रण में करना उड्डीयानबंध है। ऊर्ध्व मुखता के लिए यह अति श्रेष्ठ क्रिया है। उदर के सभी यन्त्रों को क्रियाशील करने के लिए उड्डीयान बन्ध अति उत्तम एवं श्रेष्ठ है। इसकी सिद्धि से चित्त एकाग्र होने लगता है। कुण्डलिनी जागरण होने लगती है–

ना मेरूर्ध्वमद्यश्चापि
तान पाश्चममाचरेत्।
उड्डयानान्च एष
स्यात्सर्वदु:खौधनाशन:।।
उदरे पश्चिम तानं
नाभेरूर्ध्वतु कारयेत्।
उड्डयान ख्योऽत्र बन्धाऽयं
मृत्युमातङ्गकेसरी।।

नाभि से ऊपर और नीचे पश्चिम तान का आचरण करे, जिससे कि वे दोनों भाग पीठ में जाकर लग जायें। यह उड्डयान बन्ध कहलाता है। पेट को पीछे की ओर आकर्षित करता हुआ नाभि के ऊपर के भाग में आकुंचित करे, यही उड्डीयान बन्ध, जो कि मृत्यु रूपी हाथी को वश में करने के लिए सिंह के समान है।

यह श्रेष्ठतम बन्ध दो प्रकार से किया जा सकता है। प्रथम खड़े होकर करना चाहिए और दूसरा पद्मासन में किया जाता है।

उड्डयान बन्ध क्रिया की विधि इस प्रकार है–

नित्य प्रातःकाल चार बजे उठकर शौचादि क्रिया व स्नानादि से निवृत्त होकर शान्त व आदर भाव से अपने दोनों पैरों को एक दूसरे से एक या डेढ़ फुट की दूरी रखें एवं अपनी दोनों हथेलियाँ रानों पर सटाकर थोड़ा सा आगे झुक जायें, ताकि गर्दन और कन्धों का पूरा भार दोनों हाथों पर रहे। इसके पश्चात् फेफड़ों को पूर्ण वायुरहित करके, झूठे तौर पर श्वास को ऊपर खींचने जैसी क्रिया करें। अर्थात् श्वास भीतर न जाने पाये। ऐसा करने से महा प्राचीरा ऊँची उठ जायेगी और उदर एक गहरे गड्ढे सा परिवर्तित हुआ दीखेगा। पेट जितना मेरुदण्ड से सट जाये उतना ही श्रेष्ठ है। यथा शक्ति जब तक वायु सुखपूर्वक नियन्त्रित की जा सके, नियन्त्रित करने का प्रयत्न करना चाहिए। इसके बाद गर्दन व कन्धों को पूर्ण शिथिल करें, जिससे धीरे–धीरे फेफड़ों में स्वच्छ वायु परिपूर्ण हो जाए। यह एक उड्डयान हुआ। नये साधक के लिए प्रारम्भ में दस दिन तक एक उड्डयान बन्ध प्राप्त होगा। इसी प्रकार चार या पांच मास में साधक बन्धों की संख्या सात या आठ तक बढ़ा सकता है–

नित्यं यः कुरुते योगी
चतुर्वारं दिने–दिने।
तस्य नाभेस्तु शुद्धि
साद्येन सिद्धो भवेन्मरुत्।।
षण्मासमभ्यसन्योगी
मृत्युं जयति निश्चितम्।
तस्योदरग्निर्ज्वलति
रस वृद्धिः प्रजायते।।

जो योगी इस बन्ध का नित्य प्रति चार बार अभ्यास करता है, उसके नाभिमण्डल का शोधन हो जाता है और वायु भी सिद्ध हो जाती है। यदि योगी छः महीने तक इस बन्ध के अभ्यास में तत्पर रहता है तो यह अवश्य ही मृत्यु को जीतने में समर्थ होता है और उसके उदर की अग्नि विशेष रूप से प्रदीप्त होती है तथा रस की वृद्धि होने लगती है।

अब इस सोपान का अतिक्रमण हो जाने के पश्चात् मुख्य कर्म 'नौलि' का वर्णन किया जाता है। नौलि–

अमन्द्रावर्तवेगेन तुन्दं
सव्यापसव्यतः।
नतांसो भ्रामयेदेषा
नौलिः सिद्धैः प्रचक्षते।।

योगी अपने कन्धों को नीचा करके बहुत तीव्र जल भँवर के समान वेग से उदर को दायीं व बायीं ओर जोर से घुमावें। इस कर्म को सिद्धों ने नौलि कर्म कहा है।

नौलि का अर्थ होता है–थैली। मनुष्यों के उदर में जो बड़ी आंत है, वह एक थैली के आकार की है। जो कामाद्रि के ऊपर और नाभि के समीप से दोनों ओर स्थापित की हुई है।

नौलि उदर की स्वच्छता के लिए संसार में अद्वितीय क्रिया है जो 'योगियों की षट्क्रियाओं–नेति, कपाल भांति, नौलि, धौति, वस्ति और त्राटक में से मुख्य व एक है। नौलि के अभ्यास के पूर्व उड्डीयान बन्ध का अभ्यास करना इसका प्रथम सोपान है। नौलि का अभ्यास खड़े होकर ही करना चाहिए। नौलि क्रिया सीखने के पूर्व उड्डीयान बन्ध का अच्छी प्रकार से अभ्यास होना अति आवश्यक है। मोटी तौंद वालों को बन्ध में ही एक डेढ़ वर्ष लग सकता है। उड्डीयान बन्ध की सफलता की निशानी यह है कि महा प्राचीरा वक्षःस्थल की ओर ऊपर चढ़ने लगे तो अभ्यासी को समझना चाहिए कि उसे सफलता प्राप्त हो रही है व धीरे–धीरे विकास हो रहा है।

नौलि करने की विधि इस प्रकार है–

दोनों पावों के बीच एक फुट का अन्तर रखें और दोनों हाथों को दोनों घुटनों पर रखते हुए, अपने शरीर को थोड़ा सा आगे झुका दीजिए। फुफ्फुसों को वायुरहित कर दें। अब बाह्य कुम्भक की स्थिति में झूठे तौर पर श्वास खींचें (परन्तु श्वास अन्दर प्रवेश न करे) इससे पेट और पृष्ठ एकाकार हो उठेंगे। महाप्राचीरा जब ऊपर वक्षःस्थल की ओर चढ़ जाये, तो उस समय धड़ को थोड़ा सा सीधा कर लें और वक्षःस्थल की ओर कुछ खिंचाव देते हुए नल निकालने का प्रयत्न करें। उसके बाद धीरे–धीरे श्वास लें। इस प्रकार अभ्यास करने से नल अपने आप निकल आयेगा। नलों को बाहर निकालने के लिए उचित स्थान पर दबाव देना चाहिए यानी यहाँ से दो नल प्रारम्भ होते हैं। दबाव देने से नल स्पष्ट रूप से निकल कर दृष्टिगोचर होने लगेंगे तथा उदर की सभी पेशियों में शिथिलता आयेगी।

सबसे प्रथम यह उदर के मध्य में जो नल दृष्टिगोचर होते हैं, उन्हें मध्य नौलि कहा है। नये साधक को कुछ महीनों इसी मध्य नौलि का अभ्यास अवश्य करें। इसके पश्चात् नल निकलने की स्थिति में बायें हाथ पर जोर देने से बायीं ओर नौलि आ जायेगी और दायें हाथ पर जोर देने से दक्षिण नौलि आ जायेगी। इस प्रकार करने से जब मध्य, वाम और दक्षिण– इन तीन नौलियों का अभ्यास द्वारा इन पर पूर्णरूपेण से अधिकार हो जाये तब कुछ महीनों तक इसी पर संतोष करना चाहिए।

इसके पश्चात् नलों को दायें–बायें क्रमानुसार घुमाने का प्रयत्न करना चाहिए। नल घुमाते समय ऐसा अनुभव होता है कि पेट में तरंगें उठ रही हैं। इस एक उड्डीयान बन्ध में

सात चक्कर तक देने चाहिए। साढ़े तीन बायें और साढ़े तीन दायें से बराबर घुमाना चाहिए। धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ाया भी जा सकता है।

नौलि शरद् ऋतु में सीखना अति उत्तम माना गया है। नौलि सदा नित्य नियम से प्रातःकाल स्वच्छ होकर खाली पेट से ही करें। नौलि करने के बीस मिनट पश्चात् ही कुछ तरल पदार्थ दुग्धादि जलपान के रूप में लें तो उत्तम होगा।

नौलि का दस से पन्द्रह मिनट प्रतिदिन अभ्यास अवश्य करना चाहिए। नौलि करने वालों को विशेषतः दलिया और खिचड़ी खानी चाहिए।

उदर की आभ्यान्तरिक शुद्धि एवं स्वच्छता के लिए उड्डीयान बन्ध एवं नौलि संसार में अद्वितीय क्रियायें हैं।

शारीरिक लाभ के अतिरिक्त अध्यात्मिक लाभ इससे कहीं अधिक प्राप्त होते हैं। नौलि का लाभ योग शास्त्र में इस प्रकार लिखा है-

मन्दाग्निसदीपनपाचनादि
संधापिकानन्दकरी सदैव।
अशेषदोषामयशोषणी च
हठक्रियामौलिरियं च नौलिः।।

अर्थात् यह नौलि मन्द पड़ी हुई पेट की अग्नि को दीप्त करती है और भोजन किये गये अन्न को पचाती है। आदि पद से मल शुद्धि का होना ग्रहण किया है। हर समय आनन्द देती है और समस्त वात, पित्त, कफ के रोगों को सुखाने वाली है। इसलिए यह नौलि हठयोग की क्रियाओं में सबसे मुख्य है। धौति और वस्ति कर्म नौलि के बिना नहीं हो सकते। कुंजल और शंख प्रक्षालन आदि कर्म नौलि के बिना अधूरे रहते हैं। वज्रौली तो बिना भली-भांति नौलि जाने ठीक हो ही नहीं सकती। अखिलात्मा भगवान श्रीकृष्ण जी ने योगाभ्यासियों के लिए कुछ आवश्यक पालनीय नियम बतलाये हैं जिनके पालने करने से अभ्यासी अवश्य ही अपने चरम लक्ष्य को पा सकते हैं। यथा-

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति
न चैकान्तमनश्नतः।
न चातिस्वप्नशीलस्य,
जाग्रतो नेव चार्जुनः।।
युक्ताहार विहारस्य
युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नावबोधस्य
योगी भवति दुःखहा।।

(गीता अ. 6)

अर्थात् योगाभ्यासी साधक को अधिक भोजन नहीं करना चाहिए और न ही उसको निराहार रहना चाहिए, न बहुत सोना चाहिए और न अधिक जागना ही चाहिए। जिनका आहार–विहार व हर क्रिया–कलाप संयमित है उनकी योग साधना उन्हें सब दुःख द्वन्द्वों से मुक्त करके सुखी बना देती है और वे अपने चरम लक्ष्य को पा जाया करते हैं।

महत्त्वपूर्ण निषेध–

टी.बी. से पीड़ित व्यक्ति, ह्रदय रोगी, आलसी व अधिक सोने वाला व्यक्ति तथा उच्च रक्तचाप के रोगी व्यक्ति, इनको उड्डीयान बन्ध व नौलि करने का साहस नहीं करना चाहिए। पहिले किसी विशेषज्ञ का परामर्श लेना अति आवश्यक है। 40 वर्ष से अधिक अवस्था वाले व्यक्तियों को नौलि का अभ्यास नहीं करना चाहिए। जिनको नौलि करते समय कोई पीड़ा प्रतीत होती हो उन्हें भी नौलि नहीं करनी चाहिए। बीड़ी, सिगरेट तम्बाकू व अन्य मादक पदार्थों का सेवन करने वाले व्यक्ति भी नौलि के अधिकारी कदापि नहीं हो सकते हैं। झूठ बोलने वाला धूर्त प्राणी किसी भी प्रकार की उत्तम यौगिक क्रियाओं का अधिकारी नहीं हो पाता है। खान–पान की शुद्धि ही योग–विद्या का आधार है।

उत्तम पुस्तकों के स्वाध्याय का महत्त्व

विद्वानों का कथन है कि मानव जीवन को उन्नत बनाने वाली ज्ञानवर्धन पुस्तकें मानवों की परम मित्र होती हैं। मानुष मित्र तो धोखा दे सकता है परन्तु श्रेष्ठ पुस्तकें मानव के कष्टदायक समयों में सच्चे मित्र के समान उसे सान्त्वना देने वाली और उत्साहित करने वाली होती हैं। ऋषियों–मुनियों और सन्त महात्मा पुरुषों का सत्संग तो मनुष्य को बड़ी दुर्लभता से मिलता है। विगत महात्माओं का प्रत्यक्ष सत्संग तो प्राप्त हो ही नहीं सकता। तथापि हम इन महापुरुषों के लिखे ग्रन्थों का स्वाध्याय करें तो निश्चय ही हमें इनके प्रत्यक्ष सत्संग के समान शान्ति और ज्ञान प्राप्त होता है। इसीलिए हमारे ऋषि–मुनियों ने स्वाध्याय को दैनिक कर्त्तव्य में रखा है। स्वाध्याय से जहाँ मनुष्य को प्रत्यक्ष लाभ होता है वहाँ वह ऋषि–ऋण से भी उऋण होता है।

योग–दर्शन में तो यहाँ तक कहा है कि स्वाध्यायशील व्यक्ति का मार्गदर्शन स्वयं देवता और ऋषिगण आकर किया करते हैं।

श्री रामलाल प्रभवे नमः

सद्गुरुदेव
अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का
113वां प्राकट्य दिवस समारोह

बड़े हर्ष का विषय है कि सद्गुरुदेव का 113वां प्राकट्य दिवस अक्टूबर 4, मंगलवार 2022 को श्री सिद्ध गुफा सवांई धाम में बड़े ही धूमधाम से मनाया जा रहा है। इस पावन अवसर पर सभी गुरु भाई–बहिनों से प्रार्थना करते हैं कि वे धाम पर आकर गुरुदेव का आशीर्वाद प्राप्त कर आनन्द का अनुभव करें।

जय गुरुदेव जी की।

निवेदक
आचार्य श्री दासलाल जी
श्री सिद्ध गुफा सवांई
एत्मादपुर–आगरा।

आचार्य श्री दासलाल जी महाराज के आगामी कार्यक्रम

1. *7 अक्टूबर से 9 अक्टूबर तक योगेश्वर सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज योग आश्रम टोड़रपुर–वाराणसी (निकट मोहन सराय)*
2. *11 अक्टूबर से 12 अक्टूबर तक मीरजापुर, गुरु कृपा सुमंगलम पैलेस (बिनानी धर्मशाला) धुन्धी कटरा, मीरजापुर–8369477113*
3. *13 अक्टूबर से 16 अक्टूबर कार्यक्रम स्थल–श्री बांके बिहारी गेस्ट हाऊस, पक्का तालाब, मसवानपुर, कानपुर।*

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

प्रश्नोपनिषद- ऋषि भार्गव के प्रश्न

प्रस्तुतकर्त्ता–पं. कृष्ण कुमार पाण्डेय (प्रवक्ता),गोरखपुर

सत्संग सत्र के क्रम में ऋषि भार्गव ने महर्षि पिप्पल से लोक कल्याण कारक तीन प्रश्न उनके सम्मुख रखे। ''अथ हैनं भार्गवोवैदर्भिः प्रपच्छ भगवन्कत्येव देवाः प्रजां विधारयन्ते कतर एतत्प्रकाशयन्ते कः पुनरेषां वरिष्ठ इति''। ऋषि भार्गव ने तीन बातें पूछीं। प्रथम–प्रजा यानी प्राणियों के शरीर को धारण करने वाले कुल कितने देवता है ? दूसरा–कौन–कौन से इसको प्रकाशित करते है ? तीसरा प्रश्न–इन देवताओं में सर्वश्रेष्ठ देवता कौन है ? ऋषि के प्रश्नों को सुनकर महर्षि गम्भीर हुए तथा उसका विस्तार से उत्तर देते हुए उपदेशित किया। ऋषियों दो प्रश्नों का उत्तर एक साथ सुनो। सबका आधार तो वैसे आकाश रूप देवता है, परन्तु उससे उत्पन्न होने वाले वायु, जल, अग्नि और पृथ्वी ये चारों महाभूत भी शरीर को धारण किये रहते है। यह स्थूल शरीर इन्हीं से बना है। ''क्षिति जल पावक गगन समीरा पंच रचित यह अधम शरीरा'' तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में भी बताया है। इसके विस्तार की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि साधक समुदाय इसको जानता है। शरीर इन्हीं तत्त्वों से बना है। इसलिये ये अपने स्थान के धारक देवता है। इसी प्रकार वाणी और पाँच कर्मेन्द्रियाँ नेत्र और कान। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ मन और चार अन्तःकरण से चौदह देवता इस शरीर के प्रकाशक है। ये देवता शरीर को धारण और प्रकाशित करते है। महर्षि ने एक रोचक प्रसंग सुनाया जो इन देवताओं से संबंधित है। एक बार शरीर के सभी देवता अभिमान में भरकर आपस में झगड़ पड़े कि इस शरीर में सबसे बड़ा देवता मात्र मैं ही हूँ। क्योंकि मैंने ही शरीर को स्थिर कर रखा है। आपस में झगड़ते हुए प्राण ने अपने को सर्वश्रेष्ठ बताते हुए कहा कि–देखो अभिमान में मत रहो क्योंकि इस शरीर को पाँच प्राणों द्वारा मैं ही सुरक्षित किया हूँ। मुझसे बड़ा कोई नहीं है। किन्तु शरीर के स्थानीय देवताओं को विश्वास नही हो रहा था। अंततः प्राण ने निश्चय करके अन्य देवताओं से कहा–ठीक है,

यदि तुम नहीं मानते हो तो मैं इस शरीर को छोड़कर जा रहा हूँ। जैसे ही प्राण अपने पाँचों स्थान को छोड़कर ऊपर की ओर जा रहा था। उसी के साथ अन्य देवता स्वाभाविक रूप से उसके साथ ही ऊपर की ओर उसके साथ उठने लगे। वे सब घबड़ा गए। वे सब भी प्राण के साथ बाहर जाने को विवश हो गये। वे अपने उचित स्थान पर चाहकर भी स्थिर नहीं रह सके। जैसे–मधुमक्खियों की रानी मक्खी जब छत्ते को छोड़ती है, तो सभी मक्खियाँ भी उसके साथ उड़ जाती हैं। जैसे ही वह जहाँ भी बैठती है। वहीं सब मधुमक्खियाँ बैठ जाती हैं। अन्त में अपनी गति को जानकर वे सभी इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता तथा अन्तःकरण की वृत्तियों को विश्वास हो गया कि हम सब में प्राण ही श्रेष्ठ है। अतः उसको श्रेष्ठ मानकर प्राण की स्तुति करने लगे। सबों ने अपनी स्तुति में कहा–हे प्राण आप अग्नि रूप से तपते हैं। यही सूर्य, इन्द्र, मेघ और वायु है। जिस प्रकार रथ के पहिये की नाभी से जुड़े हुए पहिये उसी पर आश्रित रहते हैं। उसी प्रकार सब प्राण के आधार पर ही स्थिर हैं। उसी की गति से सब गतिमान हैं। सबका आश्रय प्राण है। प्राण के महत्त्व को स्वीकार करके सबने संयुक्त रूप से स्तुति करते हुए कहा कि–''प्रजापतिश्चरसि गर्भेत्वमेव प्रतिजायसे। तुभ्यं प्राण प्रजास्त्विमा बलिं हरन्ति यः प्राणैः प्रतितिष्ठसि अर्थात् हे प्राण आप ही प्रजापति हैं। आप ही गर्भ में विचरण करते हुए माता–पिता के रूप में जन्म लेते हैं। सभी प्राणी तुझे भेंट अर्पित करते हैं। तू ही समस्त प्राणी के साथ अपान के रूप में समस्त भूतसमुदाय के शरीर में स्थिर है। आप ही देवताओं को हवि पहुँचाने वाले उत्तम अग्नि हो। पितरों के लिए स्वधा हो। सब प्रकार के तेज से युक्त तीनों लोकों के इन्द्र हैं। प्रलयकाल में रुद्र हैं। पृथ्वी और आकाश के बीच विचरण करने वाले आप वायु के रूप में व्याप्त हैं। आप ज्योतियों के स्वामी सूर्य हैं। आप ही मेघ रूप में सर्वत्र वर्षा करके जीवों के लिए अन्न उत्पन्न करने वाले हैं। महर्षि ने पुनः कहा कि–

व्रात्यस्त्वं प्राणैकर्षिरत्ता विश्वस्य सत्पतिः।
वयमाद्यस्य दातारः पिता त्वं मातरिश्व नः॥

अर्थात् हे प्राण आप संस्कार रहित होकर भी सर्वश्रेष्ठ ऋषि हैं। आप स्वभाव से परम शुद्ध हैं। इसलिए संस्कार द्वारा शुद्धि की आवश्यकता नहीं है। बल्कि आप सबको पवित्र करने वाले सर्वश्रेष्ठ हैं। हम लोग आप के लिये नाना प्रकार की भोजन सामग्री एकत्रित कर अर्पण करने वाले हैं। तू उस अन्न को खाने वाले हैं। आकाश में विचरण करने वाले आप समष्टि वायु रूप प्राण आप हमारे पिता हो। आप समस्त अंग समूहों में व्याप्त समस्त जीव का कल्याण करने वाले हैं। इसलिए हम लोगों में जो आवेश में अभिमान आ गया है। आप अपने आवेश को शान्त कर हम सबको अपने–अपने स्थान में प्रतिष्ठित होने में मदद करें।

हे प्राण जिस प्रकार माता अपने पुत्रों की रक्षा हर प्रकार से करती है। उसी प्रकार हम सभी इन्द्रियों की रक्षा करें। आप हमें कार्य करने की शक्ति एवं प्रज्ञा प्रदान करें। जिससे हम सब अपने कार्य को सुचारु रूप से कर सकें।

इस प्रकार महर्षि ने भार्गव के प्रश्नों का उत्तर देकर, उन सभी ऋषियों की जिज्ञासा को शान्त किया। सत्संग का यह क्रम पूर्ण हुआ। ऋषि महर्षि के उत्तर से संतुष्ट होकर साधुवाद करने लगे। पुनः अपने सायंकालीन कार्य को सम्पन्न करने हेतु अपने स्वाध्याय कक्ष पर चले गये।

ब्रह्म अथवा ईश्वर

जिस प्रकार सूर्योदय सब लोगों के लिए व्यवहार का कारण होता है, उसी प्रकार जो मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त–इन चार अन्तरिन्द्रियों, पाँच ज्ञानेन्द्रियों और पाँच कर्मेन्द्रियों की अपने–अपने विषयों में प्रवृत्ति का कारण है और सब उपाधियों से रहित तथा आकाश की भाँति सर्वव्यापी है एवं मनोहर सृष्टिकर्त्ता द्वारा सदा प्रत्यक्ष भाव से विद्यमान है—वही ब्रह्म किंवा ईश्वर है।

जैसे दर्पण, जल, तेल आदि वस्तुओं में मुख का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है, किन्तु वह प्रतिबिम्ब मुख से भिन्न नहीं है—वही ब्रह्म अथवा ईश्वर है।

—महात्मा श्री तैलंग स्वामी

।। ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः।।

कल्याण का आदि स्रोत

अन्तू राम यादव, प्रयागराज–211004

प्रातः स्मरणीय योग योगेश्वर आनन्द कन्द अनन्त श्री दादा गुरुदेव एवं सद्गुरु देव भगवान के कमलवत् चरणों में कोटिशः नमन एवं सभी आदरणीय गुरु भाई–बहनों को सादर जय गुरुदेव। वर्ष 1989 में प्रयागराज में महाकुम्भ लगा हुआ था। इस वर्ष माघ मेला के अपने शिविर में गुरुदेव भगवान लगभग डेढ़ महीने विराजमान रहे। भौतिक दृष्टि से उनका माघ मेला प्रयाग में सम्भवतः यह अन्तिम प्रवास था। प्रतिदिन गुरुदेव भगवान का ओजस्वी प्रवचन हुआ करता था। अधिकांश प्रवचन की रिकॉर्डिंग मेरे मोबाइल में मौजूद है। एक दिन अपने प्रवचन में गुरुदेव ने बताया है कि–"सिद्धान्त की बात क्या है ? कल्याण का आदि स्रोत क्या है ? और धारणा, ध्यान की विधि क्या है ? इस प्रवचन को सुनकर और गुरुदेव भगवान के मुखार्विन्द से निकले एक–एक शब्द यथावत् लिपिबद्ध करके आपके सम्मुख प्रस्तुत करने का मैं प्रयास कर रहा हूँ। मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि गुरुदेव की यह अमृत वाणी हम साधकों के लिए वरदान साबित होगी और योग मार्ग में एक कुशल पथ–प्रदर्शक का कार्य करेगी। गुरुदेव के अमृत वचन इस प्रकार हैं–

"प्रकरण लम्बा होने के कारण तुम्हारे मनों के अन्दर वह सिद्धान्त नहीं होगा। मैं पृष्ठ प्रेषण नहीं करता किन्तु अपने अभ्यासी बच्चों को एक ऐसा रास्ता दिखलाना चाहता हूँ जिस पर चल करके वे कल्याण के आदि स्रोत को प्राप्त हो जायें। एक सिद्धान्त की बात मैंने समझाई थी–"स्वाध्यायात् योगमासीत, योगात् स्वाध्याय मामनेत्। स्वाध्याय योग सम्पत्या, परमात्मा प्रकाशते।" हम सबका लक्ष्य केवल मात्र एक है कि परम पुरुष का साक्षात्कार हो जाये और परम पुरुष वह परमात्मा है, पुरुषोत्तम है, ईश्वर है, उसको हम देख सकें, जान सकें, अनुभव कर सकें, यह हमारा तुम्हारा सभी का पूरा–पूरा लक्ष्य है। उसको प्राप्त करने का एक साधन जो उपनिषदों में वर्णित है और भिन्न तरीके से मैं तुमको प्रायः समझाता रहता हूँ वो यह है–स्वाध्यायात् योगमासीत, योगात् स्वाध्याय वामने। स्वाध्याय योग सम्पत्या, परमात्मा प्रकाशते। दूसरे शब्दों के अन्दर "जप श्रान्तः शिवम् ध्यायेत्, ध्यान श्रान्तः शिवम् जपेत्।" इसका अर्थ यह है कि मनुष्य स्वाध्याय के बल से योग को प्राप्त हो। मैंने स्वाध्याय का वर्णन तुम्हारे सामने कई बार कर दिया है। स्वाध्याय के दो अर्थ होते हैं–"प्रणवादि

पवित्रानाम् जप: स्वाध्याय:, मोक्ष शास्त्राणाम् अध्ययनम् वा स्वाध्याय:।'' परमात्मा के ओंकार आदि के जो पवित्र नाम हैं उनका जप करना स्वाध्याय कहलाता है या मुक्तिदाता शास्त्रों का पाठ करना, उपनिषदों का पाठ करना, योग दर्शन का पाठ करना, गीता का पाठ करना ये सब का सब स्वाध्याय के अन्तर्गत है। भगवान व्यास देव जी महाराज ने प्रणवादि पवित्रानाम् जप: स्वाध्याय: ये शब्द कहे हैं, इसका अर्थ यह है कि ओंकार आदि जितने परमात्मा के पवित्र नाम हैं, उनका जप करना स्वाध्याय कहलाता है। उसमें ओम् भी है, कृष्ण भी है, वासुदेव भी हैं, राम भी हैं और इसी प्रकार से जो मंत्र तुम्हें ध्यान के समय दिया जाता है जिसको अजपा गायत्री कहते हैं, उसके लिये लेख है ये–''अनया सदृशे विद्या, अनया सदृशो जपो, न भूतो न भविष्यत्।'' इसके समान कोई विद्या और इसके समान कोई जप अब तक न हुआ है और न कभी आगे होगा। अर्थात् सबसे उत्कृष्टता इस जप को दी गई है। तो सिद्धान्त की बात क्या रही–''जप श्रान्त: शिवम् ध्यायेत, ध्यान श्रान्त: शिवम् जपेत्।'' स्वाध्यायात् योगमासीत। स्वाध्याय करता–करता आदमी थक जाये तो योग करे, ध्यान में बैठ जाये। मैं तुम्हें रोज–रोज यह उपदेश करता हूँ कि प्रात:काल दो घण्टे बैठ करके अपने गुरु मंत्र का जाप किया करो। यद्यपि दीक्षाकाल में उस मंत्र के जपने की विधि और तरह समझाई गई थी और वह विधि यह थी कि एक ध्यानी बैठ करके स्वांस–प्रस्वांस से अपने इस मंत्र का जाप करे। किन्तु बहुल लोग इस प्रकार के हैं, स्वांस–प्रस्वांस की विधि का पालन नहीं कर पाते। थोड़ी देर बैठ कर वे करना आरम्भ करते हैं, बस, इतनी देर में उनको नींद आनी शुरू हो जाती है। दो एक बार ये किया, बस, दो या तीन बार कहने पर निद्रा शुरू हो जाती है और शयन आरम्भ हो जाता है। इसलिये हमने दूसरी विधि का उपदेश किया जो श्री आनन्दकन्द प्रभु जी का प्रदत्त उपदेश है। जिस विधि का पालन श्री प्रभु जी अपने आप कराया करते थे और यह आज्ञा दी गई थी कि तुम इस मंत्र को जीभ से भी जाप सकते हो।

स्वाध्याय की पराकाष्ठा का एक नियम चलता है कि जिस मंत्र को हम जीभ से जपते हैं, बोल–बोल करके सुना–सुना करके जपना और होता है और जीभ जपती रहे, ओंठों से आगे आवाज न जाये उपांशु जप कहलाता है। जब ये जप दो तीन चार घण्टे लगातार होने लगेगा, उसका परिणाम ये निकलेगा कि वह जप मन में होने लगेगा। फिर हमें जीभ से जपने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। वो मंत्र मन में घूमने लगेगा। किन्तु एक बात का ख्याल रखना चाहिए। यदि हम यूँ बैठ कर जपते हैं तो नींद आयेगी ही आयेगी, तकिया लगाकर जपते हैं तो नींद आयेगी ही आयेगी, दीवार में पीठ लगाकर जपते हैं तो नींद आयेगी ही आयेगी। किन्तु स्वस्तिक आसन, या सिद्धासन, पद्मासन या गोमुख आसन, ये आसन ऐसे हैं जिनमें

मेरुदण्ड सीधा रहता है। भगवान ने आज्ञा दी गीता के अन्दर–

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन।।

अपने ग्रीवा, गर्दन, सिर सबको सीधा करके और नासिका का अग्रभाग को देखता हुआ, खैर वह नासिका अग्रभाग की विधि और है। मैं उसको नहीं समझाना चाहता क्योंकि उससे तुम्हारी साधनाओं में विक्षेप आ जायेगा। कोई–कोई मनमाना साधक वैसा करने लगेगा। वही करो जो आज्ञा दी गई है, जो समझाया गया है। पहले अपने गुरु मंत्र का जाप करो जीभ से। जीभ से करते–करते वो अपने आप कुदरती मंत्र मन में प्रवेश कर जायेगा और फिर मन–मन में होने लगेगा। यदि दो घण्टे बैठ करके जो मंत्र मन–मन में हमारे होता रहता है, मन में तब होगा जब मेरुदण्ड सीधा रहेगा। नहीं तो मन में करने लगोगे और नींद सताने लग जायेगी। तो इस लिए मन के जप के लिए मेरुदण्ड को सीधा रखना जरूरी है। मन में जो लोग बिना निद्रा के मानस जाप कर लेते हैं तो उस समय उनका मंत्र बुद्धि में प्रवेश कर जायेगा, कारण शरीर में प्रवेश कर जायेगा। कारण शरीर में प्रवेश कर जाने के बाद वह स्थिति आ जायेगी जो इस मंत्र में कही गई है–

''स्वाध्यायात् योगमासीत, योगात् स्वाध्याय मामनेत्।।
स्वाध्याय योग सम्पत्या, परमात्मा प्रकाशते।।''

कारण शरीर तक मंत्र पहुँच जाने से परमात्मा का प्रकाश स्वाभाविक हो जायेगा। इसलिए अपने मंत्र का निरन्तर जप करना चाहिए। जप शान्तः शिवम् ध्याये। जप करते–करते थक जाओ तो अपने इष्टदेव का ध्यान करने लग जाओ। ध्यान करते–करते थक जाओ तो फिर जप करना शुरू कर दो। ध्यान शान्तः शिवम् जपेत् और जप श्रान्तः शिवम् ध्यायेत्।। स्वाध्यायात् योगमासीत्, योगात् स्वाध्याय मामनेत्। स्वाध्याय योग सम्पत्या, परमात्मा प्रकाशते।। जो इस प्रकार से स्वाध्याय करते रहते हैं, मंत्र का जप करते रहते हैं और जप के बाद फिर ध्यान करते हैं, ध्यान के बाद फिर जप करते हैं। इस जप और ध्यान का परिणाम यह निकलेगा कि परमात्मा प्रकाशते, परमात्मा का प्रकाश स्वाभाविक हो जायेगा जिसके दर्शन के लिए हम प्रयत्नशील हैं।

ध्यान कैसे करना चाहिए ? मैंने समझाया है तुम्हें। थोड़ी देर के लिए मूलाधार कमल के अन्दर ध्यान करने की विधि तुमने गुरुदेव के मुख से सुनी और वो ध्यान करते हैं वहाँ। मूलाधार कमल सुषुम्ना के आरम्भ में है। गुदा द्वार से चार अंगुल ऊपर है। आवश्यक है मेरुदण्ड को सीधा रखा जाये क्योंकि कमल सुषुम्ना के अन्दर है। ये नहीं, कोई हड्डिएँ तोड़–फोड़ करके कमल को ढूंढ़ना चाहेगा उसको नहीं मिलेगा। किन्तु यह विज्ञानमय कमल

है। दिव्य दृष्टि के द्वारा ही देखा जा सकता है; जो दिव्य दृष्टि भगवान ने अर्जुन को दी और यह स्पष्ट कह दिया था–

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्।।

अर्जुन तुम अपनी इन आँखों से नहीं देख सकते। मैं तुम्हें दिव्य–चक्षु देता हूँ, उसके द्वारा तुम इस योग ऐश्वर्य को देखो। यह करने पर अर्जुन को सब दिखाई दिया जो कुछ दिखाई देना चाहिए था। इसलिए गुरुदेव के उपदिष्ट मार्ग से जो ध्यान करने की विधि बतलाई गई है, वहाँ दिव्य चक्षु काम करेंगे। बहुत से वैज्ञानिकों ने शरीरों की चार फिट चीरफाड़ करके शरीर में कमल देखने की चेष्टा की उनको कुछ नहीं मिला। न कोई कमल दिखाई दिया। महर्षि स्वामी दयानन्द जी के इतिहास में भी ऐसी बात मिलती है कि उन्होंने भी किसी मुर्दे को उठा करके उसकी चीरफाड़ करके देखा उनको कोई कमल वगैरह नहीं मिला। कारण उसका केवल मात्र एक ही था, ये इस तरह मिलने की चीज है ही नहीं। ये तो केवल मात्र दिव्य है और दिव्य चक्षुओं से ही इसका अवलोकन किया जा सकता है। तो इसलिए जप को बढ़ाओ और जप करते–करते थक जाने के बाद पन्द्रह–बीस मिनट ध्यान किया करो। जप के परिणामस्वरूप ध्यान लगने लग जायेगा, एकाग्रता आ जायेगी। योग दर्शन के अन्दर भगवान पतंजलि देव ने समाधि तक पहुँचने के उपाय तो बहुत बतलाये हैं किन्तु तीन बातें मुख्य बतलाई हैं–

उनमें से सबसे पहली धारणा है। धारणा का अर्थ है–**''देश बन्धश्चित्तस्य धारणा''**। किसी एक लक्ष्य स्थान में अपने चित्त को इकट्ठा किये रहना, धारणा कहलाती है। थोड़ी देर के अन्दर मूलाधार कमल का हम ध्यान करने लगें, सीधे बैठ कर के। वहाँ हम कल्पना करेंगे कि चार पत्ती का कमल है ये, चतुर्दल कमल है। यह सोने के रंग का है। इस प्रकार इस पर हमारे इष्टदेव जी गणेश जी बैठे हुए हैं, ये कल्पना करनी आरम्भ करेंगे। इसका नाम धारणा है। व्यास देव जी ने वहाँ पर एक बात का स्पष्टीकरण कर दिया है–''तत्रापि तावत् वृत्ती मात्रेण बन्धो–धारणा''। कोई यह न समझ ले। ये पुस्तक ले ली और इसके ऊपर यूँ आँख टकटकी लगाकर धारणा करने लग जायें, इसका नाम धारणा है। देशबन्ध की बात तो यह है, किसी एक लक्ष्य स्थान में चित्त को लगाये रखना–धारणा कहलाती है। किन्तु व्यासदेव जी ने स्पष्ट कर दिया बिल्कुल ''तत्रापि तावत् वृत्तीमात्रेण–बन्धो धारणा''। कहने का अभिप्राय यह है कि वहाँ पर धारणा का अर्थ तो वृत्तीबन्ध है। वृत्ती–बन्ध का अर्थ यह है कि कल्पना से देखो उस चीज को। मन की वृत्ती से देखो। हम यदि कल्पना कर रहे हैं तो मन की वृत्ती से सोचो कि मूलाधार कमल है, ये उसके अधिष्ठात्री देव हैं, ये बैठे हैं,

गणेश जी बैठे हैं। ये मन में सोचो, यूं नहीं कि उनकी तस्वीर लगाकर आँख खोल कर देखना शुरू कर दें। तत्रापि तावत् वृत्ती मात्रेण बन्धो धारणा। वहाँ पर भी वृत्ती–कल्पना मात्र से उसका चिन्तन करना, विचार करना–ऐसा–ऐसा कमल है ये धारणा कहलाती है। एक मनुष्य, अब हमें बहुत कहते रहते हैं–ध्यान चलाओ, हमारा ध्यान चलाओ, हमारा ध्यान चलाओ। मेरे मन में तो बहुत बातें आती हैं। ध्यान तो चलाऊँ, सबेरे मैंने इसको भेजकर दशरथ को भेजकर पुछवाया कि कितने आदमी ध्यान में बैठे हैं। तो उसका उत्तर मिला–एक तो किशन वाली बैठी है और आदमी दो–तीन बैठे हैं, दो तीन औरतें हैं आदमी तीन या चार हैं और ये कहने वाले ध्यान चलाओ, ध्यान चलाओ इनकी कोई संख्या ही नहीं है, सारा दिन कहते रहते हैं। मैं तो ध्यान चलाऊँ किन्तु मैं जो उपदेश करता हूँ उसका भी तो पालन करो थोड़ा–बहुत। कुछ करके तो दिखाओ। इलाहाबाद में आये हो–अच्छा, तुम अपने मन में यह सोचते होगे कि गुरुजी ही नहीं आते यहाँ, ध्यान में बैठने के लिए तो हम क्यों बैठें ? गुरुजी की उम्र तो लम्बी चली गई है। इनको अब विश्राम की जरूरत रहती है। इस उम्र में विश्राम करना चाहिए। काफी उमर है, तुम्हें अब क्या बतला दूँ अस्सी के आस–पास, कम ज्यादा सोच लो, एक दो वर्ष ज्यादा समझ लो। तो मेरी उमर तेरी उमर तो बराबर है नहीं। अबकी बार तो इतना है और अगली बार आने पर हमें उससे ज्यादा विश्राम की जरूरत पड़ेगी। तो मेरी नकल नहीं करनी चाहिए, मेरी बात को मानना चाहिए। बात को मानना तुम्हारा काम है, नकल करके फायदा नहीं उठा सकोगे। और नकल करो तो मैं भी कोशिश कर लूँगा भाई। तुम्हें ज्यादा मुझे तंग करना है तो बैठ जाऊँगा आकर के। किन्तु नहीं। मेरे स्वास्थ्य को देख करके तुम्हें मुझे इस प्रकार से तंग नहीं करना चाहिए। आज्ञा माननी चाहिए। आज्ञा मान के तुम तो नौजवान हो आके यहाँ बैठो आकर के। जगो चार बजे, आकर के दो घण्टे जीभ से अपने गुरु मंत्र का जाप करो। दो घण्टे जपते रहो, सात बजे से हम चलते हैं। उससे पहले एक–डेढ़ घण्टे बैठकर फिर पन्द्रह मिनट ध्यान में भी बैठ लिया करो। फिर साथ गंगा स्नान करने चले चला करो।

तो इसलिए देशबन्धश्चित्तस्य धारणा। एक लक्ष्य में अपने चित्त को बाँधे रखना, तत्रापि तावत् वृत्ती मात्रेण बन्धो धारणा। वहाँ पर भी कल्पना से, विचार से अपने मन को लगाना, यह धारणा कहलाती है। ये व्यास जी महाराज ने कहा है, तुम्हारे दादा, परदादा, पड़दादा ने। अब उसकी आज्ञा का पालन तुम भी यह व्यास जी भी नहीं करते उस आज्ञा का पालन आदि व्यास देव महाराज जी ने आज्ञा दी–तत्रापि तावत् वृत्ती मात्रेण बन्धो धारणा। अच्छा, ये शास्त्रीय नियम है–छः माह जो धारणा का दृढ़तर अभ्यास कर लेता है, संयम–नियम से रह करके उसका ध्यान कुदरती लगने लग जाता है। छः महीने तो बहुत लम्बे होते हैं, ये एक

महीना माघ का जिसमें प्रयाग में रहने का बड़ा भारी फल है, यहाँ रहने का बड़ा भारी पुण्य है। जैसे कुम्भ स्नान का पुण्य है, वैसे प्रयाग में रहने का भी फल है बहुत ज्यादा तो इस हालत में यदि तुम आज्ञा मान करके और दो घण्टे मंत्र का जाप कर लो उसके बाद पन्द्रह–बीस मिनट ध्यान में बैठ जाओ। ये करने पर परिणाम यह निकलेगा कि ध्यान जमने लग जायेगा। कैसे जमेगा। ''तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्''। जहाँ धारणा कर रहे थे, वहाँ प्रत्ययैकतानता हो जायेगी। प्रत्ययैकतानता मतलब सदृश प्रवाह। सदृश प्रवाह जब होगा तो जिसका हम ध्यान कर रहे हैं वो दिखने लगेंगे। यूँ दिखाई देने लगेंगे। यह नहीं होगा कि अब किशन जी आ गये, राम जी आ गये, फलाने आ गये, फलाने आ गये। जिसका ध्यान किया जायेगा वही दिखता रहेगा। इसका नाम हो जायेगा ध्यान। ध्यान में तीन चीजें रहती हैं–एक ध्यान करने वाला ध्याता, एक ध्यान की प्रक्रिया दो, और एक ध्येय जिसका हम ध्यान कर रहे हैं वो। ये तीन मुख्य क्रियात्मक ध्यान में रहा करती हैं। जब ध्यान परिपक्व होता चला जायेगा तो उसका परिणाम यह निकलेगा कि बस, ऐसे ध्यान करते–करते तदैवार्थ निर्मात निभसिम् स्वरूप शून्य एव समाधी। जिसमें वही–वही दिखते रहेंगे। अपना आपा भी दिखाई नहीं देगा। हम देखेंगे कि गणपतिरहम्, शिवोऽहम्, रामोऽहम्, विष्णोऽहम्। ये ज्ञान रहेगा ही नहीं कि हम कोई सांसारिक आदमी हैं, उसका नाम हो जायेगा, समाधि। सम्प्रज्ञात् समाधि। मैंने समाधि के भेद तुम्हारे सामने खोल कर कह दिये हैं। ये समाधि होते–होते यदि धारणा, ध्यान और समाधि एक ही में हो रही हैं। धारणा करने लगे तो गणेश जी में, ध्यान भी उन्हीं का हुआ और समाधि भी उन्हीं में हो गई। ये तीनों एक विषयक जब हो जायेंगी, उसका नाम संयम हो जाता है। ''त्रयमेकत्र संयमः'' एक विषयक तीनों हो जायें तो वह संयम कहलाता है। संयम सिद्ध हो जाने के बाद मनुष्य जहाँ–जहाँ संयम करेगा उसको तत्काल जानने वाला बन जायेगा। इसलिये ये विधि है, क्रम है। किन्तु सिद्धान्त को याद रखो– ''स्वाध्यायात् योगमासीत्, योगात् स्वाध्याय मामनेत्। स्वाध्याय योग सम्पत्या, परमात्मा प्रकाशते।'' स्वाध्याय से योग को प्राप्त हो। जरा रट के तो देखो मंत्र को दो घण्टे। यह ठीक है, प्रयाग संगम में स्नान करने के लिए चलते हैं हम लोग सुबह ही। उससे पहले–पहले तुम ज्यादा पुरुषार्थी नहीं हो तो चार बजे ही बैठ जाया करो किन्तु चार बजे तुम बैठ नहीं सकते। पाँच बजे ही बैठ जाया करो, कोई बात नहीं। पाँच बजे से साढ़े छः बजे, सवा छः बजे तक जप कर लो, पन्द्रह–बीस मिनट फिर ध्यान में बैठ लो। बस, सात बजे, पौने सात बजे हम चलते हैं उस समय सब मिल करके गंगा स्नान के लिए चले चला करो। तो इस विधि से यदि अपने अभ्यास क्रम को बढ़ाओगे तो इसके अतिरिक्त तो इस प्रकार की बात है। मंत्रों के जपने में तो कुछ नियम होता है। गायत्री जपने वाले बिना नहाये धोये नहीं जप सकते।

किसी और मंत्र का जाप करने वाले नहा धो कर बैठेंगे, पूजन–पाजन करके। किन्तु यह मंत्र इस प्रकार का है, इसमें तो नहाने की जरूरत नहीं, धोने की जरूरत नहीं। नहाये जपो, बिना नहाये जपो। खा के जपो, बिना खाये जपो। चलते–चलते जपो, बैठ कर जपो। सोते–सोते जपो चाहें जग कर जपो। इसमें कोई विधि निषेध है ही नहीं।

यदि इस प्रकार से कुदरती वो चलने लगेगा तो कुदरती सहाज समाधि का अवसर आ जायेगा। देखो, थोड़ी–थोड़ी बात मैं रोज समझा देता हूँ। उन बातों को समझ करके अपने अभ्यास को बढ़ाओ जो कल्याण का मूल है। नियम पक्के कर लो। तुम प्रातः काल नहीं बैठ सकते। गंगा स्नान के बाद नाश्ता लेने के बाद फिर बैठ जाया करो जप करने, कोई मना नहीं करेगा और कोई काम तो है नहीं। बाजार–बुजूर थोड़े बहुत घूमने–घामने गये तो गये नहीं तो दो घण्टे गुरु मंत्र का जप कर लिया फिर ध्यान लगा लिया। फिर शाम के समय चले जाया करो। इस प्रकार से यदि धारणा, ध्यान, समाधि का अभ्यास बढ़ाओ और वह स्वाध्याय के बल पर बढ़ेगा। स्वाध्यायात् योगमासीत्, योगात् स्वाध्याय मामनेत्। स्वाध्याय योग सम्पत्या, परमात्मा प्रकाशते। जब परमात्मा का प्रकाश होगा तो भीतर के सभी दुख धीरे–धीरे कटते चले जायेंगे। विशुद्ध ज्ञानमय बन जाओगे। जिनके मनों पर कोई और प्रभाव है। वो एक देवी का पति हमसे रोज पुष्प प्रसाद ले लेता है, उसकी हालत में सुधार है। इसी प्रकार किसी के मन में कोई प्रभाव हो, प्रसाद तो ले ले किन्तु अपने जप को बराबर करे। इस दायरे के अन्दर प्रभु जी के चरण कमलों मे कोई प्रभाव नहीं चलेगा, किसी का भी चाहे कोई कुछ करता रहे, कुछ नहीं चलेगा और अपनी आत्मिक शक्ति को बढ़ा लोगे जप कर करके फिर कहीं भी नहीं चलेगा। चाहे कहीं भी हो, कोई ऐसी बात नहीं। जहाँ पर प्रभु जी का तेज हृदय में कायम हो जायेगा चाहें यहाँ हो, चाहें बनारस हो, चाहें बेल्सरा हो, चाहें कहीं हो। चलेगा ही नहीं बिल्कुल किसी की ताकत नहीं चल सकती। ऐसी तैसी चलाने वाले की। उसकी चलाने वाले की ताकत की ऐसी–तैसी, चलेगा ही नहीं। इसलिये नियम से मंत्र जप करो बैठ करके, नियम से ध्यान में बैठो जो **कल्याण का आदि स्रोत है।**''

यह थी गुरुदेव भगवान की अमृत वाणी। हम सब योग साधकों को दृढ़ संकल्प के साथ गुरुदेव के इस अमृत–वचन के अनुरूप अपने जीवन को ढालने का प्रयास करना चाहिए। सद्गुरु भगवान कहा करते थे कि गुरुदेव की आज्ञा का पालन ही गुरुदेव की सच्ची सेवा है। अतः गुरुदेव के कम से कम एक आदेश का पालन तो हमें अपने कल्याणार्थ अवश्य ही करना चाहिए।

सादर जय गुरुदेव।

मोतियाबिन्द का प्राकृत उपचार

श्री साधनानन्द

सारे विश्व में मोतियाबिन्द का रोग बड़ी तेजी से बढ़ रहा है। डॉक्टरों के पास ऑपरेशन के अतिरिक्त मोतियाबिन्द को दूर करने का कोई उपाय नहीं है। वह भी जब पक जाये। भारत में जाड़े के दिनों में लाखों ऑपरेशन होते हैं। प्रतिवर्ष इनकी संख्या में वृद्धि होती है। लोग हजारों लाखों रुपये बड़े उत्साह से दान धर्म के नाम पर खर्च करते हैं और बड़े खुश होते हैं कि हमने बहुत बड़ा पुण्य का कार्य किया है। अन्धे को आँख मिल जाये–यह पुण्य तो है ही। परन्तु इससे अधिक पुण्य तो तब हो सकता है जब मोतियाबिन्द न होने पावे ऐसे ज्ञान का प्रशिक्षण और प्रचार किया जाये। प्राकृतिक भोजन और उपचार से मोतियाबिन्द का रोकना बड़ा आसान है।

मोतियाबिन्द के रोकने का सरल उपाय

मोतियाबिन्द के ऑपरेशन करने के बाद डॉक्टर रोगी की आँख में हरी पट्टी बाँध देता है। इससे यह बात सिद्ध होती है कि आँखों के लिए हरा रंग अत्यन्त आवश्यक है। यदि हम प्रतिदिन हरी पत्ती के साग या उनके रस का प्रयोग करें तो मोतियाबिन्द क्या कोई रोग न होगा।

मोतियाबिन्द का रोग धीरे–धीरे बढ़ता है। डॉक्टर रोगी से यह कह देते हैं कि अभी ऑपरेशन नहीं होगा। परन्तु उसके रोकने या ठीक होने का उपाय नहीं बताते हैं। बेचारा वृद्ध सालों प्रतीक्षा करता है। प्राकृतिक चिकित्सा में मोतियाबिन्द न हो इसकी चिकित्सा बड़ी सरल है। प्रारम्भ में भी प्राकृतिक भोजन और उपचार से ठीक किया जा सकता है।

प्रत्येक व्यक्ति यदि प्रतिदिन अपने भोजन में चने का साग, पालक, चौलाई की पत्तियों का एक गिलास रस पी लिया करे तो मोतियाबिन्द नहीं होगा, यदि हो गया होगा तो ठीक हो जायेगा। प्रातःकाल या भोजन के बाद पीना चाहिए।

रात्रि को सोते समय आँखों में नीम या कमल के फूल का शहद लगाने से भी मोतियाबिन्द ठीक हो जाता है।

शहद और अपामार्ग (चिडचिडा) की जड़ शहद के साथ घिसकर लगाने से लाभ होगा।

प्रतिदिन असली चन्दन घिसकर माथे में लगाने से मोतियाबिन्द नहीं होता है। शुद्ध गाय का घी रात्रि को सोते समय आँखें में लगाने से लाभ होता है।

आँखें क्यों खराब होती हैं ?

आँखों की खराबी के कई कारण हो सकते हैं जिनमें मुख्यतः आँखों की सफाई और अप्राकृतिक भोजन हैं। जिसकी ओर लोगों का ध्यान अभी तक नहीं गया है। यद्यपि लोग नित्य आँखें धोते हैं, परन्तु आँखें कब और कैसे धोनी चाहिए इसका ज्ञान लोगों को नहीं है। घर की मातायें छोटे बच्चों की आँखों की सफाई करना नहीं जानती हैं। जिनके कारण बच्चों की आँखें खराब हो जाती हैं। छोटे बालक जब जग जाते हैं और रोने लगते हैं, माँ अपने काम में लगी रहती है, बच्चा आँखों को मलता रहता है, इससे आँखें खराब होती हैं। माँ को चाहिए कि बच्चे को रोने न दें, आँखों को मलने न दें, जैसे ही बच्चे जग जाये परन्तु उनकी आँखों की सफाई कर दें, इससे आँखें कभी खराब नहीं होती

है। जब बच्चे अपने हाथ से आँखें धोने लग जाते हैं तो माता-पिता बच्चों की तरफ से असावधान हो जाते हैं। इसमें भी बच्चों की सफाई का ध्यान रखना चाहिए। बच्चे क्या प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आँखों की सफाई का बराबर ध्यान रखना परमावश्यक है। जो भोजन मनुष्य करता है, उससे आँखों को जो शक्ति मिलनी चाहिए वह नहीं मिलती है। आँखों की सही सफाई और भोजन का प्राकृतिक सुध ार कर लिया जाये तो आँखों को कभी कोई तकलीफ नहीं हो सकती है।

स्कूल में पढ़ने वाले विद्यार्थियों की आँखों की यदि परीक्षा सही ढंग से की जाये तो 5 प्रतिशत ही ऐसे बच्चे निकलेंगे कि जिनकी आँखें ठीक होंगी। बाकी की आँखों में कुछ न कुछ खराबी अवश्य होगी। इसका मुख्य कारण बच्चों का गलत भोजन और आँखों की सही सफाई न करना है। स्कूली बच्चों के दैनिक जीवन का अध्ययन किया जाये तो कई ऐसी बातें निकलेंगी जिसके कारण उनकी आँखें खराब होती हैं। इसके कुछ कारण नीचे दिये जाते हैं।

1. प्रत्येक विद्यार्थी को नित्य सूर्योदय के एक घण्टे पहले अवश्य ही चारपाई छोड़ देनी चाहिए।

2. मैंने देखा है कोई-कोई विद्यार्थी 8-9 बजे तक आँखें नहीं साफ करते, आँखों की सफाई के लिए, उठने के बाद, भोजन के बाद, सोने के पहले, मुँह में पानी भर कर लोटे में ठण्डा पानी लेकर 25-30 छींटे देकर आँखों की सफाई करनी चाहिए।

3. कब्ज का रहना, जिन विद्यार्थियों को उठने के बाद तुरन्त शौच की हाजत नहीं होती उन्हें कब्ज रहता है। जिसके कारण सिर दर्द रहने लगता है, सिर दर्द के कारण भी आँखें खराब हो जाती हैं। इसलिए प्रत्येक विद्यार्थी को शौच के पहले पेट भर पानी पीना चाहिए। पानी पीने से शौच साफ होता है।

4. बिजली की तेज रोशनी में अधिक देर तक पढ़ना या मन्द प्रकाश में पढ़ना, यह दोनों बातें हानिकारक हैं। सूरज की रोशनी में पढ़ना-लिखना लाभकारी होता है।

5. बाजार की बनी वस्तुओं का खाना, जैसे चाट, बिस्कुट, चाय, चीनी, मिठाई, डबल रोटी आदि जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक तो है ही उनका प्रभाव आँखों पर भी पड़ता है।

6. व्यायाम का अभाव, आँखों के व्यायाम करने की प्रथा संसार में नहीं के बराबर है। शारीरिक व्यायाम में भी योगासन करना ही अधिक लाभकारी सिद्ध हुआ है।

7. झुककर पढ़ना, लेटे-लेटे पढ़ना, पेट के बल पढ़ना, बिना आँखों की सफाई किये पढ़ना। अधिकांश विद्यार्थी परीक्षा के दिनों में रात्रि को पढ़ते हैं, परन्तु बिना आँखों की सफाई किये ही पढ़ने लग जाते हैं।

8. आँखों के दुखने पर, काजल, अंजन, सुरमा तथा ऐसी अनेक दवाइयाँ प्रचलित हैं, जिनसे लाभ की जगह हानि अधिक होती है। गाँव की बुढ़िया का काजल और अंजन से आँखें खराब होती हैं। डॉक्टरों की दवाइयाँ और चश्मे भी आँखों के खराब करने में सहायक हैं।

9. आँखों को बिना विश्राम दिये 10-12 घण्टे पढ़ना लिखना। प्रकृति ने आँखों के विश्राम के लिए पलकों को बनाया है। हम उस पर ध्यान नहीं देते हैं। प्रारम्भ में इसका पता नहीं चलता है, परन्तु जब आँखों से अधिक काम लिया जाता है और विश्राम नहीं मिलता है, तो आँखों की दृष्टि कमजोर हो जाती है। पढ़ते या लिखते समय बार-बार पामिंग क्रिया के द्वारा आँखों को विश्राम देना चाहिए।

10. पढ़ते या लिखते समय बिजली का प्रकाश पीछे की ओर से आना चाहिए, सामने की रोशनी का प्रभाव आँखों पर गलत पड़ता है।

11. ग्रहण देखने से भी आँखें खराब होती हैं। ग्रहण को कभी न देखें।

12. वेजीटेबिल घी, मैदा आदि की बनी वस्तुओं के प्रयोग से आँखें खराब होती हैं।

13. अधिक नमक, मिर्च, मसाले का प्रयोग करने से भी आँखों की रोशनी कम होती है।

14. सिनेमा देखने वालों की आँखें खराब रहती हैं। सिनेमा से आँखें जो खराब होती हैं, उसका ज्ञान शायद ही किसी को होता हो।

15. आँखों के खराब होने का एक कारण विषयोपभोग भी है। जब कभी कोई नवयुवक किसी सुन्दर युवती या बालिका को कुदृष्टि से देखता है, उस समय उसके मन पर एवं समस्त शरीर पर एक कामशक्ति की लहर सी दौड़ जाती है। जिसके कारण मन दूषित होता है। मन के दूषित होने पर आँखों की रोशनी कम हो जाती है। क्योंकि देखने का काम आँखों का नहीं मन का है, आँख तो केवल यन्त्रमात्र है। इसलिए अपने मन को सदाचारी रखना चाहिए।

16. छोटे–छोटे बच्चों की आँखों में शौकिया धूप के चश्मे एवं प्लास्टिक के चश्मे लगा दिये जाते हैं जिनके रंग का प्रभाव आँखों पर पड़ता है। ऐसे चश्मों का व्यवहार कभी न करें।

17. तेज रोशनी को कभी न देखें, यदि रोशनी सामने आ जाये तो आँखों को बन्द कर लें।

18. एक वर्ष तक के बच्चे को तेज धूप में लेकर न चलें यदि चलना ही पड़े तो कपड़े से ढक लें।

19. तेज धूप में चलने पर सिर पर तौलिया रख लेनी चाहिए। पानी में भिगोकर रखने से और भी अच्छा रहेगा। इससे आँखों को शीतलता प्राप्त होती है।

20. आँख को धुआं, धूल, गर्द में खोले रहने से आँखें खरबा हो जाती हैं।

21. किसी भी वस्तु को बहुत जोर लगाकर देखना या बहुत दूर तक निगाह डालने से, आँखों की नाड़ियों पर तनाव पड़ने से आँखों की रोशनी कम हो जाती है और लगातार यदि विश्राम न मिला और तनाव बना रहा तो धुंधलापन दिखाई पड़ने लगता है और रोशनी कम पड़ जाती है।

22. किसी बन्द कमरे में जहाँ हवा न जाती हो वहाँ प्रायः रहने से आँखों के सामने निरन्तर वही दृश्य छाया रहता है, इससे आँखों की शक्ति कमजोर हो जाती है।

23. हर समय चश्मा लगाये रहने से उन्हें विश्राम न देने से रोशनी कमजोर हो जाती है।

24. दूसरे व्यक्ति का चश्मा लगाने तथा बगैर आवश्यकता के शौक के लिए चश्मा लगाने से आँखें खराब हो जाती हैं और फिर बिना चश्मा लगाये चैन ही नहीं पड़ता है।

25. भययुक्त चित्र देखना, मानसिक चिन्ता और सिर में दर्द रहना या रुसी आदि रोग होने पर आँखें खराब हो जाती हैं।

26. ब्रह्मचर्य की कमी, अत्यधिक विषय भोगों की आसक्ति से मस्तिष्क शुद्ध नहीं रहता है और तनाव पड़ता है। जिसके कारण रोशनी कमजोर हो जाती है।

27. खेसारी का सत्तू आँखों के लिए अत्यन्त हानिकारक है। गर्मी बरसात में तो खुले मैदान में सोना चाहिए। बन्द कमरे में पंखा चलाकर सोने से स्वास्थ्य की हानि होती है। मुँह ढककर कभी न सोयें, मच्छरों से बचने के लिए मच्छरदानी का प्रयोग करना चाहिए। पैर के तलवों में सरसों के तेल की मालिश करने से आँखों की रोशनी बढ़ती है। मस्तक आँखों में गाय के घी की मालिश करना चाहिए। यदि रात्रि में आँख खुल जाये तो कुल्ला करके आँखों को धोकर ही सोना चाहिए। बिना आँखें धोये सो जाने से आँखों में गन्दगी जम जाती है।

—क्रमशः

गृहस्थ के लिए आवश्यक पंच महायज्ञों का विधान

श्री हरलाल शास्त्री, फर्रुखाबाद

भारतवर्ष में प्राचीन काल से अहिंसा का पालन तत्परता से करने के लिए हिन्दू कहलाने वाले वर्ग को प्रतिदिन 5 यज्ञों का विधान किया था जिनसे अपने पराये सब सुख रहित थे। मनुस्मृति–

फच्वसूनागृहस्थस्य चुल्लीपेषण्युपस्करः।
कण्डनीचोंद कुम्भश्च वध्यते यास्तुवाह्रन्।। *(मनु. 3/68)*

अर्थात् चूल्हा, सिललोढ़ा, झाडू, उखली, घड़ा वास्तव में गृहस्थ के घर में यह पाँच कसाई खाने कहे जाते है अतः अनिवार्य रूप से अंग्रेजी शासन ने भारत की सभ्यता को भुलाने के लिए अपनी भाषा का प्रचार किया और उसमें नौकरी का विधान कर दिया जिससे अधिकतर ने संस्कृत को छोड़कर नौकरी वाली भाषा का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया और वेद को छोड़ दिया। वास्तव में शरीर और मन की शुद्धि करने वाली और ब्रह्म की प्राप्ति कराने वाली संस्कृत का ही परित्याग कर दिया तब वेदाध्ययन करना तो प्रायः असंभव ही हो गया। इस असम्भवता में भी ऋषियों ने कल्याण के लिये नियम बनाये कि गौतम, आपस्तम्ब–एकमृयमेकं वायजुरेकं वा सामाभिव्याहरेत्। अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद की एक ऋचा का ही अध्ययन कर ले मनु का वचन है–

अपां समीपे नियतो नैत्यिकं विधिमास्थितः।
साविन्नीमप्यधीयति गत्त्वारण्यं समाहितः।।

नित्य के अवश्य अध्येय वेदाध्ययन के लिए कम से कम इतना अवश्य ही करे कि वन में जलाशय के समीप बैठकर सावधान होकर गायत्री का जप करे इससे भी त्रुटि देखकर कि एक ही व्यक्ति के अध्ययन से संसार का ही दीर्घ काल तक कोई लाभ नहीं हो सकता– इसीलिए इस परम्परा को चलाने के लिए उपाय करना चाहिए जिससे नवीन वेद ज्ञाता उत्पन्न होते रहें। इसलिये अधिकारी शिष्यों को वेद पढ़ाना चाहिए। यथा–

यो विद्यामधीत्य आर्थिने न ब्रूयात् स कार्यहास्यात् श्रेयसीद्वार मपावृनुयान्।

अर्थात् जो वेदाध्यान करके शिष्य को उसका अध्यापन नहीं कराता, वह कार्य की हानि करता है और कल्याण का मार्ग ही बन्द कर देता है। मनु का वाक्य–

यमैव तु शुचिं विद्या नियतं ब्रह्मचारियम्।
तस्मै मां ब्रूहि विप्राय निधिपाया प्रमादिने।।

अर्थात् जिसे तुम पवित्र-जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी मुझ निधिकारक्षक अप्रमादि विप्र को पढ़ा करे। प्रतिदिन तिलोदक देकर पितरों को तृप्त करना और एक ब्राह्मण को भोजन कराना इस प्रकार पितरों को तृप्त करना यह दैनिक प्रसिद्ध पितृयज्ञ है। हाँ पितृ पक्ष में प्रतिदिन पार्वण श्राद्ध करने का विधान है। पर आधुनिक समय में तो प्राय: तर्पण ही करके अपनी श्रद्धा प्रकट करते हैं केवल मृत्यु तिथि को श्राद्ध, ब्राह्मण भाजन देने में अपना कर्त्तव्य पूर्ण समझते हैं।

वास्तव में अर्थयादि नित्य पितरों की और परलोकगामी नैमित्यिक पितरों को पिंड प्रदानादि से किये जाने वाले सेवारूप यज्ञ को पितृयज्ञ कहते हैं।

सन्मार्ग में लगाने और असन्मार्ग से बचाकर माता, पिता, पुत्र का ज्ञान प्राप्ति कराते हैं। उन्हीं के अथक परिश्रम से मनुष्य धर्म अर्थ, काम-मोक्ष को प्राप्त होकर सुखी होता है। ऐसे दयालु माता, पिता की प्राप्ति के लिए उनके सम्मान के लिए अपनी कृतज्ञता के लिए उनसे उऋण होने के लिए पितृयज्ञ नितान्त आवश्यक है। आधुनिक काल में विरले ही पुत्र इस प्रकार माता-पिता का महत्त्व मानते हैं। अधिकतर स्त्रियों की प्राप्ति होने के बाद वृद्ध माता-पिता को साधारण भोजन भी नहीं दे सकते। परंच समधिक अवज्ञा करते हैं। फिर वह सुखी कैसे रह सकते हैं। श्री तुलसीदास जी कहते हैं-

नारि विवशनर सकल गुसायीं।
नाचहिं वट मर्कट की नायीं।।

ऐसी दशा में माता, पिता तो मनुष्य के होते हैं उनकी स्त्रियाँ पति की माता को क्यों मान सकती हैं यह ख्याल तो मनुष्य की वृद्धि पर ही निर्भर है।

देवयज्ञ-जिसमें सूर्य, अग्नि, चन्द्र, शिव, विष्णु, ब्रह्मा, लक्ष्मी, नवग्रह आदि की प्रीति के लिए घृत द्वारा आहुति दी जाती है यही देवयज्ञ कहा जाता है।

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यक् आदित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिः वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः।।

अर्थात् अग्नि में जो आहुति दी जाती है वह आदित्य में पहुँचती है। आदित्य से वर्षा होती है वर्षा से अन्न होता है अन्न से प्राणी उत्पन्न होते और जीते हैं।

भूतयज्ञ-सभी जीवों पशु, पक्षी, कृमि, कीट, कुत्ता, चाण्डाल, अन्त्यज, अपाहिज सबको शक्ति अनुसार प्रतिदिन सिद्ध अन्न देने का विधान है। जिससे रोटी का प्रश्न हल होकर आपस में प्रेम बढ़े। दु:ख दरिद्रता आजकल की सी न रहे।

नृयज्ञ-अतिथि सत्कार करना नृयज्ञ कहलाता है। आजकल अपने दोस्तों में पु3ष और स्त्रियाँ अपनी सहेलियों में इकसा प्रचार यथा कथंचित चाय, दालमौठ मुगौड़ी, पकौड़ी आदि से तो करते हैं वह भी बदले की भावना प्रधान होती है। भूखा, गरीब अपरिचित व अपाहिज आ जाये तो उसके लिए हम लोगों के घर में या हृदय में कोई स्थान नहीं है। प्राय:

निराश होकर ही लौटता है। भारत में पूर्वज दम्पति अतिथि को भोजन करा कर ही स्वयं करते थे। यह प्रत्येक गृहस्था का साधारण धर्म था इसी से वह अबकी अपेक्षा सुखी थे। मनुस्मृति–

अघं स केवलं भुद्क्तेय:

पचत्यात्म कारणात्।

(3/118)

अर्थात् अपने लिए रसोई बनाने वाला पाप का ही भक्षण करता है। पंचमहायज्ञ के विवरण से आप अवश्य समझ गये होंगे कि जब घर में 5 महायज्ञ होते थे तब कोई झगड़ा विषमता, संघर्ष नाम वाले दृश्य सामने नहीं सुनाई पड़ते थे जैसे कि आज हो रहे हैं। जीवन यात्रा सुखपूर्वक हो सब प्रकार चलती थी। कृत्रिमता नाम की कोई वस्तु नहीं दिखाई देती थी।

कृत्रिमता–आज के समय में समाज कृत्रिमता की तरफ दौड़ रहा है। अपनी सत्य दशा पर पर्दा डालकर कृत्रिम रूप से संसार के सामने आने पर ही प्रयत्न करता है। इसी कारण दुःख उठाता है। अतः कृत्रिमता को त्यागकर सत्यता का पालन करते हुए जीवन निर्वाह करना चाहिए।

पंचमहायज्ञ का वर्णन ऋषियों ने अपने धर्म–ग्रन्थों में यत्र–तत्र किया है।

तंत्तियारण्यक में–

पंचवा एते महायज्ञा सतति प्रतायन्ते, देवयज्ञ:, पितृयज्ञ:, मनुष्य यज्ञ: भूतयज्ञ:, ब्रह्मयज्ञ:।

आश्वत्रायन में–**अयाता पंचमहायज्ञा: देवयज्ञ:, भूतयज्ञ:, पितृयज्ञ:, ब्रह्मयज्ञ:, मनुष्य यज्ञ:।**

छान्दोग्य परिशिष्ट–

देव भूत पितृ ब्रह्म मनुष्याणांयनुक्रमात्। महासत्राणि जानीयात् त एव हि महासखा।

इसी प्रकार याज्ञवल्क्य, मनुस्मृति आदि में इनका वर्णन है।

भगवान कृष्ण ने भी कहा है–

यज्ञा शिष्टाशिन: सन्त:

मुच्यन्ते सर्व किल्विषै:।

इत्यादि।

वैराग्य

किसी गृहस्थ के यहाँ एक विरक्त साधु भोजन करने आये। उनके लिए गृहस्थ ने खीर-जलेबी, लड्डू, बरफी, पूरी-साग आदि तैयार करवा कर परोसा। उस भोजन सामग्री को देखकर उन्होंने कहा- यह साधुओं और विरक्तों के योग्य नहीं है, उनको ऐसा भोजन नहीं देना चाहिये। उनको तो रूखी-सूखी रोटी अच्छी लगती है। यह कहकर भोजन नहीं किया और वहाँ से जाने लगे। जाते समय गृहस्थ उनको बढ़िया ऊनी चादर देने लगे, तब वे बोले- 'हमें इसकी आवश्यकता नहीं।' और बहुत अनुरोध करने पर भी उसको नहीं लिया। तब उस गृहस्थ का उनमें श्रद्धा-विश्वास पहले की अपेक्षा अधिक हो गया।

इससे समझना चाहिये कि यदि वैराग्य है तो वैराग्य के साथ सारे गुण अपने आप ही आ जाते हैं। किन्तु किसी में विद्या और गुण भी हैं तो वे गुण वैराग्य के बिना स्थायी नहीं रह सकते। अतः जहाँ वैराग्य है, वहाँ सब कुछ है। इसलिए साधक को संसार के समस्त भोगों से, शरीर से, सम्पत्ति से और परिवार से- सबसे तीव्र वैराग्य करना चाहिये। महर्षि पतंजलि जी ने समाधि की सिद्धि के लिए अभ्यास और वैराग्य- ये दो साधन बतलाकर वैराग्य के स्वरूप का इस प्रकार वर्णन किया है -

दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यं।

●●●

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________________

स एव काले भुवनस्य गोप्ता, विश्वाधिपः सर्व भूतेषु गूढ़ः।
यस्मिन युक्ता ब्रह्मर्षयो देवताश्च, तमेवं ज्ञात्वा मृत्युपाशं छिनत्ति।।

अर्थात् वही समय पर समस्त ब्रह्माण्डों की रक्षा करने वाला, समस्त जगत का अधिपति और समस्त प्राणियों में छिपा हुआ है। जिसमें वेदज्ञ, महर्षि गण और देवता लोग भी ध्यान द्वारा संलग्न हैं। उस परमदेव परमात्मा को जानकर ऐसे ही ध्यान द्वारा मनुष्य मृत्यु के बन्धनों को काट डालता है।

संस्थापक :— योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. रामलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य प्र. (डॉ.) रामलाल शर्मा